संकल्प

एक पीढ़ी के सपने और दूसरी पीढ़ी के भविष्य का उपन्यास

(श्री जगदीश प्रसाद मण्डल के मैथिली उपन्यास ‘संकल्प’ का हिंदी अनुवाद)

संकल्प

मैथिली उपन्यास

जगदीश प्रसाद मण्डल

संकल्प

हिंदी अनुवाद

पं. शिव कुमार मिश्र

संकल्प

एक पीढ़ी के सपने और दूसरी पीढ़ी के भविष्य का उपन्यास

जगदीश प्रसाद मण्डल

हिंदी अनुवाद

पं. शिव कुमार मिश्र

पल्लवी प्रकाशन
बेरमा/निर्मली

SANKALP

Hindi translation of the Maithili novel Sankalp
Original author: Shri Jagdish Prasad Mandal
Hindi translator: Pandit Shiv Kumar Mishra

Sankalp is a deeply rooted Maithili novel by Jagdish Prasad Mandal that traces the transformation of a rural family through education, labour, bereavement, social responsibility and self-determination. Set in the agrarian world of Mithila, the novel begins with Giyanchan's resolve to educate his son Raghunath, a promise shaped by his own generation's lack of access to formal schooling. After Giyanchan's death, that unfinished resolve passes into the hands of his wife, Savitri.

Widowed, economically strained and surrounded by social customs and obligations, Savitri gradually grows from a dependent householder into the central decision-maker of the family. With the support of Vicharchan and Devan, she safeguards her children's future, rebuilds the family's agricultural base and ensures Raghunath's education.

Fifteen years later, Raghunath graduates in Agriculture and chooses farming over salaried employment. The novel culminates in a marriage proposal that raises a larger question: who should have the right to decide the future of two adult lives? Through this journey, Sankalp becomes a powerful reflection on education, agriculture, women's agency, tradition, social dialogue and the enduring strength of human resolve.

Published by: Pallavi Prakashan
Tulsi Bhawan, Nehru Marg, Ward no. 06, Nirmali, District: Supaul, Bihar: 847452

First Edition: 2026
ISBN: A/F
Price: 299/-
Copyright: © Publisher

Printed by: Manav Art (Pallavi Prakashan)
Typesetting: Dr. Umesh Mandal, umeshberma@gmail.com
Cover Design: Mrs. Poonam Mandal, Nirmali, Supaul, Bihar- 847452

Website: http://pallavipublication.blogspot.com
Email: pallavi.publication.nirmali@gmail.com
Mobile: +91 99316 54742, +91 62006 35563
Font Source: Google Fonts

All rights reserved. No part of this book may be reproduced, distributed, transmitted, adapted, paraphrased, stored in a retrieval system, or processed in any form or by any means, including electronic, mechanical, digital, or artificial intelligence systems, without the prior written permission of the copyright holder or the publisher.

समर्पण

उन सभी संघर्षशील माताओं को

जिनके धैर्य, श्रम और संकल्प से

संतान का भविष्य आकार लेता है।

प्रस्तावना

मनुष्य का जीवन केवल परिस्थितियों से संचालित नहीं होता। उसके भीतर विचार की एक ऐसी शक्ति भी होती है जो विपरीत समय में उसे दिशा देती है, टूटन के बीच जीवन को फिर से संगठित करने का साहस प्रदान करती है और असम्भव दिखाई देने वाले भविष्य की ओर रास्ता खोलती है। यही विचार जब दृढ़ होकर कर्म का रूप ग्रहण करता है, तब वह संकल्प बन जाता है। जगदीश प्रसाद मण्डल का मैथिली उपन्यास 'संकल्प' इसी मानवीय शक्ति की कथा है। यह किसी एक व्यक्ति की इच्छा अथवा किसी एक परिवार के उत्थान की कहानी मात्र नहीं है। यह उस प्रक्रिया का उपन्यास है जिसमें विचार, शिक्षा, श्रम, सामाजिक सहयोग, आत्मनिर्भरता और आत्मनिर्णय मिलकर जीवन की दिशा बदलते हैं।

उपन्यास की भूमि मिथिला का ग्रामीण समाज है। यहाँ खेत-पथार, पोखर-कुएँ, पेड़-बाँस, जातियों और परिवारों से बनी सामाजिक संरचना, लोकाचार और संस्कार हैं; साथ ही आर्थिक अभाव, सीमित साधन और प्रकृति पर निर्भर किसान-जीवन की अनिश्चितता भी है। प्रारम्भ में भाग्यपुर का जो सामाजिक और आर्थिक परिदृश्य सामने आता है, वह केवल कथा की पृष्ठभूमि तैयार नहीं करता, बल्कि आगे आने वाले पात्रों के निर्णय, संघर्ष और जीवन-दृष्टि को समझने की भूमि भी बनाता है। जमींदारी व्यवस्था की स्मृतियाँ, बाढ़ और सूखे से जूझती खेती, सीमित आय, शिक्षा का बढ़ता व्यय और परिवार की मर्यादा के बीच जीवन चलाने का प्रश्न उपन्यास के सामाजिक यथार्थ को आकार देता है।

इसी ग्रामीण संसार के बीच गियानचन का परिवार सामने आता है। पुत्र रघुनाथ के जन्म के साथ उनके भीतर यह विचार जन्म लेता है कि उनकी अपनी पीढ़ी भले ही शिक्षा के पर्याप्त अवसर से वंचित रही हो, अगली पीढ़ी को उसी

अभाव में नहीं जीना चाहिए। वे निश्चय करते हैं कि रघुनाथ जितना पढ़ना चाहेगा, उसे उतना पढ़ाएँगे। देखने में यह एक पिता का सहज निर्णय है, किन्तु आगे चलकर यही पूरे उपन्यास का केंद्रीय सूत्र बन जाता है। गियानचन के लिए पुत्र केवल परिवार का उत्तराधिकारी नहीं, भविष्य की सम्भावना है। इसी कारण शिक्षा भी यहाँ केवल नौकरी, पद अथवा सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त करने का साधन नहीं रहती; वह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक जीवन की दिशा बदलने वाली शक्ति बन जाती है।

यहीं उपन्यास के शीर्षक का गहरा अर्थ खुलना शुरू होता है। संकल्प केवल किसी इच्छा की घोषणा नहीं है। उसकी वास्तविक परीक्षा समय, अभाव, बीमारी, मृत्यु और अनिश्चितता के बीच होती है। गियानचन पुत्र के लिए जिस भविष्य की कल्पना करते हैं, उसे पूरा होते देखने के लिए स्वयं जीवित नहीं रह पाते। उनकी मृत्यु के बाद वही संकल्प सावित्री के जीवन का दायित्व बन जाता है। इस प्रकार 'संकल्प' पिता की निजी इच्छा से आगे बढ़कर पति से पत्नी और एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचने वाली जीवन-प्रतिज्ञा का रूप ग्रहण करता है। यही इसकी कथा-संरचना की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषताओं में से एक है।

सावित्री इस उपन्यास की केंद्रीय जीवन-शक्ति हैं। पति की मृत्यु के बाद उनके सामने केवल वैधव्य का शोक नहीं है। छोटे बच्चों का पालन-पोषण, आर्थिक संकट, गिरवी रखी जमीन, सामाजिक रीति-रिवाज, विधवा के प्रति समाज की दृष्टि और बच्चों के भविष्य की चिन्ता एक साथ उनके सामने उपस्थित हो जाती है। कथा की विशेषता यह है कि सावित्री अचानक किसी असाधारण अथवा आदर्शीकृत नायिका में परिवर्तित नहीं होतीं। वे असमंजस से गुजरती हैं, दूसरों की सहायता स्वीकार करती हैं, अनुभव से सीखती हैं, प्रश्न करती हैं, विचार करती हैं और धीरे-धीरे अपने निर्णय-बोध को विकसित करती हैं। इसी प्रक्रिया में वे परिवार की आश्रित सदस्य से उसकी निर्णायक शक्ति बनती जाती हैं।

सावित्री का यह विकास 'संकल्प' को केवल पारिवारिक संघर्ष की कथा नहीं रहने देता। उनके माध्यम से उपन्यास स्त्री की उस आन्तरिक शक्ति को सामने लाता है जो परिस्थिति के दबाव में टूटती नहीं, बल्कि अनुभव से अपना

विवेक निर्मित करती है। उनके लिए आत्मनिर्भरता का अर्थ अकेले सब कुछ कर लेना नहीं है। वे सहयोग स्वीकार करती हैं, किन्तु धीरे-धीरे यह भी समझती हैं कि स्थायी जीवन-व्यवस्था के लिए अपने आर्थिक आधार, अपनी निर्णय-क्षमता और अपने श्रम पर विश्वास आवश्यक है। इस दृष्टि से सावित्री का चरित्र उपन्यास में स्त्री-सशक्तीकरण की किसी घोषणात्मक अवधारणा से नहीं, जीवन के वास्तविक अनुभवों से विकसित होता है।

विचारचन और देवन की उपस्थिति इस व्यक्तिगत संघर्ष को व्यापक सामाजिक अर्थ देती है। विचारचन की आत्मीयता गियानचन से उनकी मित्रता के कारण है, जबकि देवन अनुभव, विवेक और सामाजिक समझ के स्तर पर परिवार को दिशा देने वाले व्यक्ति के रूप में सामने आते हैं। इन पात्रों के माध्यम से उपन्यास मृत्यु-संस्कार, विधवा-जीवन, पारिवारिक सम्बन्ध, स्त्री-पुरुष की भूमिका, परम्परा, व्यवहार और सामाजिक उत्तरदायित्व जैसे अनेक प्रश्नों को कथा के भीतर स्वाभाविक रूप से उठाता है। इसीलिए 'संकल्प' में घटनाएँ केवल घटती नहीं हैं; पात्र उन पर विचार भी करते हैं, अपने अनुभवों से उनकी व्याख्या करते हैं और सम्भव रास्तों की तलाश करते हैं।

मण्डलजी परम्परा को न एक झटके में अस्वीकार करते हैं और न उसे विचार से परे मानकर स्वीकार करते हैं। वे उसकी विविधता, उपयोगिता और अन्तर्विरोध तीनों को सामने रखते हैं। मृत्यु और श्राद्ध से जुड़े अनेक विधान, अलग-अलग समुदायों के व्यवहार तथा एक ही कर्म के भिन्न सामाजिक अर्थ बार-बार यह प्रश्न उठाते हैं कि बदलती परिस्थितियों में मनुष्य किस मार्ग से चले। उपन्यास इसका कोई एक कठोर और अंतिम सूत्र नहीं देता। उसके पात्र विचार-मंथन, परिस्थिति-बोध, अनुभव और जीवनोपयोगिता के आधार पर रास्ता खोजते दिखाई देते हैं। इस प्रकार परम्परा और विवेक के बीच टकराव को लेखक केवल विरोध के रूप में नहीं, संवाद की सम्भावना के रूप में भी देखते हैं।

'संकल्प' में संवादों का विशेष महत्त्व इसी कारण है। संवाद केवल कथा को आगे बढ़ाने का माध्यम नहीं हैं; वे पात्रों की चेतना के निर्माण और विस्तार की प्रक्रिया भी हैं। देवन, विचारचन और सावित्री बार-बार बैठकर किसी प्रश्न को अनेक दिशाओं से देखते हैं। उनकी 'मुँह-मिलानी' वस्तुतः विचारों की मुँह-

मिलानी बन जाती है। आदेश की जगह संवाद, अन्धानुकरण की जगह विवेक और एकतरफा निर्णय की जगह सहभागिता की प्रवृत्ति उपन्यास की महत्त्वपूर्ण विशेषता है। पात्र एक-दूसरे को केवल सूचना नहीं देते, बल्कि एक-दूसरे के सोचने की प्रक्रिया को भी प्रभावित करते हैं।

सावित्री के व्यक्तित्व-विकास में शिक्षा का प्रश्न निर्णायक भूमिका निभाता है। रघुनाथ को विद्यालय भेजने को लेकर पति-पत्नी के बीच पहले भी मतभेद रहा था। गियानचन पाँच वर्ष की आयु पूरी होने की प्रतीक्षा करना चाहते थे, जबकि सावित्री उसे पहले ही विद्यालय भेजना चाहती थीं। गियानचन की मृत्यु के बाद वही प्रश्न नए अर्थ के साथ फिर सामने आता है। जब रघुनाथ का नाम विद्यालय में लिखाने का निर्णय होता है, तब कथा शोक और संस्कारों के घेरे से निकलकर भविष्य की ओर मुड़ती है। पिता का अधूरा संकल्प अब पहली बार ठोस व्यवहार में उतरना शुरू करता है।

किन्तु शिक्षा यहाँ कोई अमूर्त आदर्श नहीं है। विद्यालय में नाम लिखाने से लेकर आगे की पढ़ाई तक प्रत्येक चरण के लिए आर्थिक साधन आवश्यक हैं, और परिवार के पास तत्काल पर्याप्त धन नहीं है। ऐसे समय विचारचन का सहायता के लिए आगे आना उस सामाजिक सहयोग को रेखांकित करता है जो उपन्यास की मूल चेतना से जुड़ा है। व्यक्ति का संकल्प केवल उसके भीतर जीवित रहकर पूरा नहीं होता। परिवार, मित्र, पड़ोसी और समाज की सहायक शक्ति कई बार उसे आगे बढ़ने के लिए आवश्यक आधार प्रदान करती है। 'संकल्प' इस सहयोग को दया के रूप में नहीं, सामाजिक सम्बन्ध की जिम्मेदारी के रूप में देखता है।

उपन्यास का दूसरा बड़ा आधार कृषि है। सावित्री धीरे-धीरे समझती हैं कि परिवार को केवल बाहरी सहायता के सहारे नहीं चलाया जा सकता। आत्मनिर्भर जीवन के लिए स्थायी आर्थिक आधार आवश्यक है, और उनके परिवार के लिए यह आधार खेती है। बीमारी और मृत्यु के समय पाँच बीघा जमीन वाले परिवार की आर्थिक स्थिति बिगड़ती है। जमीन गिरवी जाती है, पेड़-बाँस तक बेचने पड़ते हैं। किन्तु आगे चलकर यही कृषि-आधार नए ढंग से संगठित किया जाता है। गिरवी रखी जमीन छुड़ाई जाती है, बिखरी हुई जोत को

यथासम्भव समेटा जाता है और सिंचाई के साधन जुटाए जाते हैं। धीरे-धीरे परिवार की अर्थव्यवस्था फिर खड़ी होती है। पन्द्रह वर्ष बाद यही परिवार कृषि से प्राप्त आय के सहारे रघुनाथ की उच्च शिक्षा पूरी कराने की स्थिति में पहुँचता है।

कथा का यह पक्ष अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि यहाँ कृषि केवल जीविका नहीं, पुनर्निर्माण का माध्यम बनती है। जिस जमीन को संकट के समय बचाए रखना कठिन हो गया था, वही आगे परिवार की आर्थिक स्वतंत्रता और अगली पीढ़ी की शिक्षा का आधार बनती है। इस प्रकार मिट्टी, श्रम और शिक्षा के बीच एक जीवंत सम्बन्ध बनता है। 'संकल्प' ग्रामीण जीवन की समस्याओं को केवल अभाव की दृष्टि से नहीं देखता; वह उसी जीवन के भीतर सम्भावना और पुनर्गठन की शक्ति भी तलाशता है।

इसी बिन्दु पर शिक्षा और कृषि का सम्बन्ध उपन्यास में विशेष अर्थ ग्रहण करता है। गियानचन का संकल्प यह नहीं था कि बेटा पढ़-लिखकर अनिवार्य रूप से किसी नौकरी में जाए। उनका मूल आग्रह था कि बेटा शिक्षा से वंचित न रहे और अपनी सम्भावनाओं को विकसित कर सके। रघुनाथ कृषि स्नातक बनने के बाद अपने जीवन का निर्णय स्वयं करता है और नौकरी के स्थान पर खेती को अपना कार्यक्षेत्र चुनता है। इस प्रकार उपन्यास शिक्षा और कृषि को परस्पर विरोधी क्षेत्रों के रूप में नहीं देखता। वह यह सम्भावना सामने रखता है कि आधुनिक शिक्षा मनुष्य को अपनी जमीन और श्रम से दूर करने के बजाय उन्हें अधिक वैज्ञानिक, विवेकपूर्ण और सम्मानजनक ढंग से ग्रहण करने की क्षमता भी दे सकती है।

यहीं पीढ़ियों का एक महत्त्वपूर्ण वृत्त पूरा होता है। गियानचन स्वयं शिक्षा के पर्याप्त अवसर से वंचित रहे, इसलिए उन्होंने बेटे को पढ़ाने का संकल्प लिया। सावित्री ने विपत्ति के बीच उस संकल्प को जीवित रखा। सामाजिक सहयोग ने उसे बल दिया, कृषि ने उसे आर्थिक आधार प्रदान किया और रघुनाथ ने उच्च शिक्षा पूरी की। किन्तु रघुनाथ केवल पिता की इच्छा का निष्क्रिय पालन नहीं करता। वह शिक्षा और अनुभव के आधार पर अपना जीवन-पथ स्वयं चुनता है। इस प्रकार संकल्प का अर्थ आज्ञापालन से आगे बढ़कर व्यक्तित्व-निर्माण और आत्मनिर्णय तक पहुँचता है।

यही आत्मनिर्णय कथा के अन्तिम हिस्से में विवाह के प्रसंग के साथ और स्पष्ट होता है। कमिश्नर जैसे उच्च पदस्थ व्यक्ति के परिवार से रघुनाथ के लिए विवाह-प्रस्ताव आता है। इसके साथ सामाजिक प्रतिष्ठा, आर्थिक स्तर, मध्यस्थता और विवाह से जुड़ी पुरानी मान्यताएँ भी सामने आती हैं। लड्डूलाल घटक की भूमिका विवाह को प्रतिष्ठा और लाभ की दृष्टि से देखने वाली मानसिकता को उजागर करती है। दूसरी ओर पन्द्रह वर्षों के संघर्ष और अनुभव से सावित्री इतनी परिपक्व हो चुकी हैं कि किसी बड़े निर्णय को केवल बाहरी प्रतिष्ठा अथवा पद से प्रभावित होकर स्वीकार नहीं करतीं।

इस प्रसंग का सबसे महत्त्वपूर्ण पक्ष यह है कि विवाह से पहले रघुनाथ की राय जानने की आवश्यकता महसूस की जाती है और उसके बाद लड़की के विचार को भी उतना ही आवश्यक माना जाता है। उपन्यास यहाँ विवाह को केवल दो परिवारों के बीच बनने वाला सामाजिक सम्बन्ध मानकर नहीं रुकता; वह उसे दो वयस्क मनुष्यों के जीवन का निर्णय मानता है। यह परिवर्तन आकस्मिक नहीं है। कथा आरम्भ में एक बच्चे की शिक्षा के अधिकार से शुरू होकर अन्त में एक वयस्क मनुष्य के जीवन-निर्णय के अधिकार तक पहुँचती है। इस दृष्टि से शिक्षा, आत्मनिर्भरता और आत्मनिर्णय उपन्यास में एक-दूसरे से गहरे जुड़े हुए हैं।

उपन्यास का अन्त भी इसी विचारशीलता के अनुरूप है। लेखक कोई कृत्रिम निर्णय आरोपित नहीं करते। विवाह का प्रश्न विचार के लिए खुला रह जाता है और पात्र अपने-अपने रास्ते चले जाते हैं। इससे यह संकेत मिलता है कि जीवन के बड़े निर्णय केवल सामाजिक दबाव अथवा तत्काल उत्साह में नहीं किए जाने चाहिए। समय, संवाद और सम्बन्धित व्यक्तियों की इच्छा का अपना महत्त्व है। यहाँ संकल्प का अर्थ हठ नहीं है; वह विवेक से समर्थित दृढ़ता है। यही भेद उपन्यास की वैचारिक संरचना को विशेष अर्थ देता है।

'संकल्प' की कथा-यात्रा को यदि समग्र रूप में देखें तो उसका विन्यास भी ध्यान देने योग्य है। कथा सामाजिक परिवेश से आरम्भ होकर परिवार में प्रवेश करती है, परिवार से व्यक्ति के संकट तक पहुँचती है, संकट से पुनर्निर्माण की ओर बढ़ती है और अन्ततः शिक्षा, कृषि तथा आत्मनिर्णय के व्यापक प्रश्नों तक जाती है। इस क्रम में संकल्प स्वयं भी बदलता और विस्तृत होता चलता है।

आरम्भ में वह गियानचन की इच्छा है, फिर सावित्री का दायित्व बनता है, उसके बाद परिवार के श्रम और सामाजिक सहयोग का आधार ग्रहण करता है और अन्त में रघुनाथ के स्वतंत्र निर्णय में अपना परिपक्व रूप प्राप्त करता है। इस दृष्टि से उपन्यास का शीर्षक केवल कथा की किसी एक घटना का नाम नहीं, उसकी सम्पूर्ण आन्तरिक संरचना का संकेत है।

'संकल्प' की रचना-शैली भी उसके कथ्य की तरह विशिष्ट है। मण्डलजी ग्रामीण जीवन के अनुभव, लोक-शब्द, कहावतें, उपमाएँ, धार्मिक-सांस्कृतिक संकेत और सामान्य बातचीत को विचार के साथ जोड़ते हैं। अनेक स्थानीय शब्द केवल भाषिक सजावट नहीं हैं; वे उस समाज की स्मृति, व्यवहार और अनुभव के वाहक हैं। खेत, नदी, बीज, पेड़, पानी, चाँद, सूर्य, मिट्टी, पत्तल और हल जैसी परिचित वस्तुएँ उनके यहाँ कई बार विचार और दर्शन की भाषा बन जाती हैं। इसी कारण उपन्यास का चिन्तन ग्रामीण जीवन से बाहर से आरोपित किसी विमर्श की तरह नहीं लगता; वह उसी जीवन के भीतर से उत्पन्न होता है।

मण्डलजी की भाषा का एक महत्त्वपूर्ण गुण उसकी अनुभव-सापेक्षता है। वे विचार को अमूर्त रूप में प्रस्तुत करने की अपेक्षा उसे जीवन की किसी घटना, वस्तु, व्यवहार अथवा संवाद से जोड़ते हैं। यही कारण है कि उनके यहाँ सामाजिक प्रश्न प्रायः पात्रों के व्यवहार से खुलते हैं। विचार कथा को रोककर बाहर से प्रवचन के रूप में प्रवेश नहीं करता, बल्कि पात्रों की बातचीत, दुविधा, स्मृति और अनुभव के माध्यम से अपना अर्थ ग्रहण करता है। 'संकल्प' में विचारात्मक संवादों की प्रमुखता को इसी कथा-प्रवृत्ति के भीतर समझना चाहिए।

जगदीश प्रसाद मण्डल आधुनिक मैथिली साहित्य के उन रचनाकारों में हैं जिनकी रचनात्मक दृष्टि के केन्द्र में साधारण मनुष्य का जीवन-संघर्ष है। किसान, स्त्री, श्रमिक, वृद्ध, बच्चा और सामाजिक रूप से कमजोर व्यक्ति उनकी रचनाओं में केवल करुणा के पात्र नहीं बनते; वे विचार, श्रम, निर्णय और कर्म की क्षमता से सम्पन्न मनुष्य के रूप में सामने आते हैं। उनके साहित्य में ग्रामीण जीवन का यथार्थ, मानवीय संवेदना, सामाजिक सरोकार, श्रम की गरिमा और मनुष्य की आत्मनिर्भरता बार-बार महत्त्वपूर्ण रूप में उपस्थित होती है। वे सामाजिक विषमता और अभाव को देखते हैं, किन्तु मनुष्य को केवल

परिस्थितियों का शिकार मानकर नहीं छोड़ते। उनके पात्र कठिन स्थितियों के बीच भी अपने लिए कोई रास्ता बनाने का प्रयास करते हैं। 'संकल्प' इसी व्यापक रचना-दृष्टि का एक उल्लेखनीय उदाहरण है।

मण्डलजी के व्यक्तित्व और रचनात्मकता से मेरा सम्बन्ध केवल एक पाठक, अनुवादक अथवा साहित्यिक सहयात्री का सम्बन्ध नहीं है। हम दोनों एक ही गाँव बेरमा के निवासी हैं। एक ही ग्रामीण परिवेश से जुड़े होने के कारण मुझे उन्हें निकट से देखने, समझने और उनके साथ अनेक सामाजिक कार्यों में सहभागी होने का अवसर लम्बे समय से मिलता रहा है। इस निकटता ने मुझे उनके व्यक्तित्व के उस पक्ष से भी परिचित कराया है जो किसी पुस्तक, परिचय अथवा सार्वजनिक मंच से पूरी तरह नहीं जाना जा सकता।

सन् 2000 से काफी पहले ही मण्डलजी सामाजिक जीवन में सक्रिय हो चुके थे। लगभग पैंतीस वर्षों तक निरन्तर समाज-सेवा करते हुए उन्होंने केवल बेरमा के ग्रामीणों को ही प्रभावित नहीं किया, बल्कि आसपास के व्यापक क्षेत्र में भी अपनी विशिष्ट पहचान बनाई। सामाजिक प्रश्नों में उनकी सक्रियता, सामान्य लोगों से सहज सम्पर्क और सामुदायिक कार्यों में उनकी भागीदारी ने उन्हें व्यापक सम्मान दिलाया। उनकी सामाजिक भूमिका किसी मंचीय उपस्थिति अथवा औपचारिक गतिविधि तक सीमित नहीं रही; वह उनके दैनिक जीवन और व्यवहार का हिस्सा रही है।

मैं स्वयं उनके व्यक्तित्व से अत्यन्त प्रभावित रहा हूँ। मेरे लिए मण्डलजी के व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषताओं में से एक मनसा, वाचा और कर्मणा की एकरूपता है। उनके विचार, वचन और कर्म परस्पर विपरीत दिशाओं में चलते दिखाई नहीं देते। वे जो सोचते हैं, उसे कहने में संयम रखते हैं और जिसे उचित मानते हैं, उसे अपने व्यवहार में उतारने का प्रयास करते हैं। यही आन्तरिक अनुशासन उनकी जीवन-पद्धति को विशिष्ट बनाता है। सादगी, आत्मसंयम, कर्मनिष्ठा और सामाजिक उत्तरदायित्व उनके व्यक्तित्व में केवल उपदेश के रूप में नहीं, बल्कि व्यवहार में दिखाई देने वाले गुण हैं। वर्षों तक उन्हें निकट से देखते हुए मैंने अनुभव किया है कि उनका प्रभाव केवल उनकी बातों से नहीं, बल्कि उनके जीने और काम करने के ढंग से पड़ता है। यही कारण है कि उनका

व्यक्तित्व मेरे लिए निरन्तर प्रेरणा का स्रोत रहा है।

साहित्य के क्षेत्र में सक्रिय होने के बाद हमारा यह सम्बन्ध एक नए रूप में आगे बढ़ा। सन् 2000 के बाद जब मैं साहित्यिक गतिविधियों से अधिक निकटता से जुड़ा, तब मण्डलजी के साथ साहित्यिक मंचों पर भी निरन्तर सम्पर्क बना रहा। 'सगर राति दीप जरय' कथा-गोष्ठी जैसे साहित्यिक आयोजन हमारे लिए केवल रचना-पाठ के अवसर नहीं रहे; वे विचार-विनिमय, सामाजिक अनुभव और साहित्यिक आत्मीयता के साझा स्थल भी बने। इस प्रकार सामाजिक जीवन से आरम्भ हुई निकटता धीरे-धीरे साहित्यिक सहयात्रा में भी बदलती गई।

इसी कारण 'संकल्प' का हिन्दी अनुवाद करते समय मेरे सामने केवल एक पुस्तक नहीं थी। मेरे सामने उस रचनाकार का जीवन-अनुभव भी था, जिसके अनेक सामाजिक संस्कारों और जीवन-मूल्यों को मैंने निकट से देखा है। उपन्यास में श्रम, शिक्षा, किसान-जीवन, सामाजिक सहयोग, संयम, आत्मनिर्भरता और विचारपूर्वक निर्णय लेने की जो प्रवृत्तियाँ बार-बार सामने आती हैं, वे मण्डलजी की व्यापक जीवन-दृष्टि से अलग नहीं लगतीं। यह कहना उचित नहीं होगा कि लेखक का जीवन और उसके पात्र एक ही हैं, किन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि जिस सामाजिक परिवेश, श्रम-संस्कृति और नैतिक चेतना से उनकी रचनाएँ जन्म लेती हैं, उससे उनका अपना जीवन भी गहरे रूप में जुड़ा हुआ है। इस दृष्टि से इस कृति का अनुवाद मेरे लिए केवल भाषिक कार्य नहीं, एक आत्मीय अनुभव भी रहा है।

हिन्दी में किसी मैथिली उपन्यास का अनुवाद केवल शब्दों का भाषान्तरण नहीं हो सकता। दोनों भाषाएँ निकट होते हुए भी लोक-संस्कार, सम्बोधन, लय, मुहावरे, पारिवारिक सम्बन्धों और सामाजिक व्यवहारों के स्तर पर अपनी-अपनी विशिष्टता रखती हैं। 'संकल्प' में यह चुनौती और अधिक है, क्योंकि उसकी कथा स्थानीय शब्दावली, संस्कारों, ग्रामीण व्यवहारों और विचार-सूत्रों से निर्मित है। कई शब्दों का अर्थ उनके कोशगत अर्थ से अधिक व्यापक होता है; उनके भीतर किसी समाज का अनुभव, स्मृति और व्यवहार भी समाहित रहता है।

अनुवाद करते समय मेरा प्रयास यही रहा है कि हिन्दी पाठ सहज और पठनीय बने, किन्तु मूल रचना की मिट्टी, लोकध्वनि और विचार-लय नष्ट न हो। जहाँ स्थानीय शब्द अपने साथ विशिष्ट सांस्कृतिक अर्थ लेकर आते हैं, वहाँ उन्हें यथासम्भव सुरक्षित रखना मुझे मूल रचना के प्रति अधिक न्यायपूर्ण लगा। जहाँ शाब्दिक अनुवाद से भाव अथवा प्रसंग की स्वाभाविकता प्रभावित होती थी, वहाँ मूल आशय और संवाद की सहजता को प्राथमिकता दी गई है। मेरा उद्देश्य मैथिली की प्रकृति को कृत्रिम ढंग से हिन्दी पर आरोपित करना भी नहीं था और हिन्दी की सुविधा के लिए मूल रचना के सांस्कृतिक रंग को समाप्त करना भी नहीं। इन दोनों के बीच एक स्वाभाविक भाषिक सेतु बनाने का प्रयास किया गया है।

'संकल्प' की मूल शक्ति अन्ततः इसी बात में निहित है कि वह मनुष्य की वास्तविक पूँजी को केवल जमीन, धन, पद अथवा वंश में नहीं खोजता। उसके केन्द्र में वह विचार है जिसे मनुष्य कर्म में बदलता है और जो एक जीवन से दूसरे जीवन तक पहुँच सकता है। गियानचन का संकल्प सावित्री के श्रम और धैर्य से आगे बढ़ता है, सामाजिक सहयोग से शक्ति पाता है, खेती के पुनर्गठन से आर्थिक आधार प्राप्त करता है, रघुनाथ की शिक्षा में फलित होता है और अन्ततः आत्मनिर्णय की चेतना तक पहुँचता है। इस प्रकार यह किसी एक व्यक्ति के संकल्प की कथा होकर भी परिवार, समाज और पीढ़ियों के बीच प्रवाहित होने वाली जीवन-दृष्टि का उपन्यास बन जाता है।

आज जब मैं मण्डलजी के 'संकल्प' को हिन्दी में प्रस्तुत कर रहा हूँ, तब मेरे भीतर अनुवादक की प्रसन्नता के साथ एक ग्रामीण की आत्मीय अनुभूति भी है। मुझे इस बात का गौरव है कि जगदीश प्रसाद मण्डल जैसे रचनाकार मेरे अपने गाँव के हैं। जिस व्यक्ति को वर्षों तक सामाजिक जीवन में सक्रिय देखा, जिसके साथ सामाजिक और साहित्यिक मंचों पर चलने का अवसर मिला और जिसकी जीवन-पद्धति तथा कार्य-दृष्टि ने मुझे निरन्तर प्रभावित किया, उसी की कृति को हिन्दी के व्यापक पाठक-समाज तक पहुँचाने का अवसर मेरे लिए विशेष महत्त्व रखता है।

इस अनुवाद-कार्य को पूरा करते हुए मैं अपने को कृतकृत्य अनुभव करता

हूँ। यह अनुभूति केवल इसलिए नहीं है कि एक मैथिली उपन्यास का हिन्दी रूपान्तरण सम्पन्न हुआ है, बल्कि इसलिए भी है कि अपने ही गाँव के एक ऐसे रचनाकार की कृति को दूसरी भाषा के पाठकों तक पहुँचाने में मैं सहभागी बन सका हूँ, जिनका जीवन और साहित्य दोनों मेरे लिए प्रेरणा के स्रोत रहे हैं।

मुझे विश्वास है कि हिन्दी पाठक इस उपन्यास में मिथिला के एक ग्रामीण परिवार की कथा के साथ-साथ शिक्षा और श्रम का सम्बन्ध, स्त्री की आत्मनिर्भरता, परम्परा और विवेक का द्वन्द्व, सामाजिक सहयोग, कृषि की गरिमा, पीढ़ियों के बीच दायित्व तथा व्यक्ति के आत्मनिर्णय जैसे अनेक प्रश्न भी पाएँगे। ये प्रश्न कथा के समय और स्थान तक सीमित नहीं हैं। बदलते सामाजिक जीवन में आज भी इनकी प्रासंगिकता बनी हुई है।

'संकल्प' अन्ततः यह विश्वास जगाता है कि विपरीत परिस्थितियाँ मनुष्य की सम्भावनाओं का अन्तिम निर्णय नहीं करतीं। यदि विचार के साथ धैर्य, श्रम, सहयोग और विवेक जुड़ जाएँ, तो एक पीढ़ी का अधूरा स्वप्न दूसरी पीढ़ी के जीवन में आकार ग्रहण कर सकता है। यही इस उपन्यास की मानवीय ऊर्जा है और यही उसके शीर्षक की सार्थकता।

यदि यह हिन्दी रूपान्तरण मूल रचना की जीवन-गन्ध, विचार-ऊर्जा, ग्रामीण संवेदना और मानवीय आत्मीयता को हिन्दी पाठकों तक पहुँचा सके, तो मैं अपने इस प्रयास को सार्थक मानूँगा।

पं. शिव कुमार मिश्र

हिन्दी अनुवादक

पहला पड़ाव

मिथिला के सघन गाँवों के बीच भाग्यपुर भी एक गाँव है। स्वतन्त्रता से पहले, अर्थात 1947 ईस्वी से पूर्व, दूसरे गाँवों की तरह यह गाँव भी राजा से लेकर जमीन्दार तक की जमीन्दारी के जाल में बँधा हुआ था। जिस तरह गाँवों का भाग्य राजा-रजवाड़ों के हाथ में रहता था, उसी तरह भाग्यपुर का भाग्य भी उन्हीं के हाथों में था। आज हम समझते हैं कि जमीन का मूल्य उसका दाम निर्धारित करता है, लेकिन आजादी से पहले के समाज में जमीन का दाम भी निर्धारित था और दो वर्ष की बकाया मालगुजारी भी उसके भाग्य का निर्णय कर देती थी। समय पर मालगुजारी न चुकाने पर जमीन नीलाम हो जाती थी। तब जमीन उसके मालिक की नहीं रह जाती, बल्कि मालगुजारी वसूलने वाले के अधिकार में चली जाती थी।

मिथिला के गाँवों की सघनता केवल मिथिला की ही विशेषता हो, ऐसी बात नहीं है, फिर भी देश के ग्रामीण क्षेत्रों में सबसे अधिक सघन आबादी वाले गाँवों में मिथिला के गाँव प्रमुख हैं। इस दृष्टि से केरल की समकक्षता को भी नकारा नहीं जा सकता। केरल के ग्रामीण क्षेत्र भी दूसरे राज्यों की अपेक्षा सघन हैं। एक ओर हजारों वर्षों की गुलामी ने देश की रीढ़ तोड़ दी थी, दूसरी ओर मिथिला की सघन आबादी भी जमीन पर बोझ बनी हुई थी। फलतः गरीबी और भुखमरी जीवन का स्वाभाविक हिस्सा थीं। साथ ही मानसून पर निर्भर किसानों का जीवन निरन्तर अनिश्चितता में चलता था। किसी वर्ष बाढ़ आती और खेतों के साथ घर-द्वार तक धो-पोंछकर बहा ले जाती, तो किसी वर्ष सूखा पड़ जाता। सब जानते हैं कि बारह वर्ष के सूखे के बीच मिथिला में सीता का जन्म हुआ और वर्षा भी हुई। लेकिन सीता के जन्म के बिना भी बारह-बारह वर्ष के सूखे मिथिला में प्राचीन काल से पड़ते आए हैं। इससे मिथिला मिट तो नहीं गई।

आजादी के समय आसपास के गाँवों के पोखर और कुएँ फागुन के बाद

सूखने लगते थे। धीरे-धीरे अधिकांश पोखर-कुएँ सूख जाते और अगले वर्ष की वर्षा की प्रतीक्षा में सूखे पड़े रहते। इस दृष्टि से भाग्यपुर भाग्यवान रहा है। लेकिन उसे पूरी तरह भाग्यवान भी कैसे कहा जाए? दूसरे गाँवों की तरह यहाँ न तो सारे पोखर-कुएँ सूख जाते थे और न सभी में वर्षभर पानी बना रहता था।

गाँव के बीच एक छहमासी धारा भी थी। गाँव के किसान उसे समय पर काम आने वाली धारा नहीं मानते थे, क्योंकि आषाढ़ से अगहन तक उसमें पानी रहता था और उस समय सिंचाई के पानी की विशेष आवश्यकता नहीं पड़ती थी। गेहूँ की खेती आश्विन-कातिक से आरम्भ होती है और लगभग बीस दिन बाद उसे पानी की आवश्यकता पड़ती है। ऐसे में उस धारा से गेहूँ की एक-दो सिंचाइयाँ सम्भव थीं, लेकिन यह सोच आज के परिवेश की है। 1971-72 ईस्वी से पहले अपने यहाँ गेहूँ की खेती लगभग नहीं होती थी। जो थोड़ी-बहुत होती भी थी, वह बिना सिंचाई के होती थी।

आज भले ही रोटी को प्रमुख भोजन का स्थान मिल गया हो, पहले अपने यहाँ उसे दूसरे दर्जे का भोजन माना जाता था। इसी कारण पर-पाहुन और सम्मानित अभ्यागत को भोजन में रोटी नहीं परोसी जाती थी। समाज में एक ओर मर्यादित व्यवस्था थी और आज भी है, तो दूसरी ओर उस मर्यादा का निर्वाह न कर सकने वाले साधनहीन लोग भी रहे हैं और आज भी हैं। इसी से समाज के भीतर मर्यादित और अमर्यादित परिवारों की अपनी-अपनी जीवनधाराएँ बहती आई हैं और आज भी बह रही हैं।

भाग्यपुर बगीचों, पेड़-वृक्षों, पोखरों और कुओं से सम्पन्न गाँव है। जिस तरह पोखर-कुएँ और पेड़-वृक्ष यहाँ सघन हैं, उसी तरह बीस से अधिक जातियों के लोग भी गाँव में बसे हैं। ऊँची जमीन पर गाँव बसा होने के कारण गाँववालों को आज तक आवास-भूमि की कमी नहीं हुई। भाग्यपुर की जमीन तीन श्रेणियों की है। पहली ऊँची, दूसरी मध्यम, जिसमें धान की खेती होती है और तीसरी वह, जिसे चौर या चौरी कहा जाता है। तीनों प्रकार की जमीन भाग्यपुर में है।

ऊँची बसावट होने के कारण दूसरे गाँवों की तरह यहाँ साल-दर-साल घर उजड़ने की नौबत नहीं आती थी और घरों की बसावट भी ऐसी नहीं थी कि

कभी आग लगने पर भारी उपद्रव मच जाए। गाँव सघन होने के बावजूद भाग्यपुर की जमीन, अर्थात खेत-पथार, बिखरे हुए हैं, क्योंकि गाँव में कोई बहुत बड़ा-सम्पन्न किसान नहीं है। अधिकतर परिवार मध्यम श्रेणी के किसान हैं। फिर भी खेत-पथार से वंचित परिवारों की संख्या कम नहीं है।

दूसरे गाँवों की तरह भाग्यपुर के लोगों का जीवन भी अनेक रंगों वाला है। व्यवस्थित परिवार जिस तरह अपना जीवन चलाते हैं, अव्यवस्थित परिवार उसी तरह नहीं चला पाते। यह केवल आज की बात नहीं है; पहले भी कभी ऐसा नहीं रहा कि सबका जीवन एक ही ढंग से चलता हो। मनुष्य की कद-काठी उसके जीवन को बनाती भी है और बिगाड़ती भी है। आर्थिक दृष्टि से मनुष्य के जीवन का जो गठन होता है, उसमें आज तक एकरूपता नहीं आई है, इसलिए विषमता का होना स्वाभाविक है। जैसी आर्थिक उन्नति होगी, उसी के अनुरूप मनुष्य का निर्माण भी होगा।

मान लीजिए, माता-पिता के मन में यह भाव है कि बच्चों को अच्छी शिक्षा देना उनका पुनीत कर्तव्य है। वे इस संकल्प को अपने मन में रोपते और स्थापित भी करते हैं, लेकिन आज की शिक्षा-व्यवस्था जिस तरह खर्चीली होती गई है, उसमें माता-पिता का वह संकल्प कितने समय तक खड़ा रह पाएगा? यही बात मर्यादित भोजन और दूसरे व्यवहारों पर भी लागू होती है। मर्यादित भोजन का अर्थ है सन्तुलित भोजन। जिस गाँव-समाज में आजादी के समय साँझ होते-होते चूल्हा तक नहीं जलता था, वहाँ सन्तुलित भोजन केवल कल्पना बनकर रह जाता था।

आज भी यह धारणा जीवित है कि मनुष्य की आयु सौ वर्ष है, अर्थात मनुष्य सौ वर्ष तक सक्षम अवस्था में जी सकता है। लेकिन यह भी देखना होगा कि जीवन की कैसी धारा बने, जिससे मनुष्य सौ वर्ष का घाट पार कर सके। शरीर के रोग का कोई ठिकाना नहीं। यदि कुछ सहारा है तो अच्छा भोजन और अच्छे कर्म, लेकिन कितने लोगों को ये उपलब्ध हैं? रोग तो रोग है, साध्य से लेकर असाध्य तक। ऐसी स्थिति में सौ वर्ष का जीवन जी लेना हँसी-ठट्ठे की बात नहीं है।

परिवार की जैसी स्थिति होती है, उसी के अनुरूप उस परिवार का जीवन

भी बनता है। खैर, जो जहाँ जैसा बनता है, बने, उससे गियानचन को क्या लेना-देना। उनका अपना पाँच सदस्यों का परिवार है- माता-पिता, पत्नी, स्वयं और एक बेटी। गियानचन ने अपने परिवार को जनकपुर के राजा जनक की फुलवारी की तरह इस प्रकार सँभाल-सजा रखा है कि वह दुनिया के सामने एक समृद्ध परिवार के रूप में खड़ा है। गियानचन को सारी दुनिया अपने इसी पाँच सदस्यों के परिवार में दिखाई देती है।

दिखाई भी क्यों न दे? जिस गाँव-समाज में माता-पिता और बेटा-बहू के बीच दिन-रात गाली-गलौज चलती रहती है, वहीं गियानचन के माता-पिता परिवार को अपना मानते हुए सत्तर-पचहत्तर वर्ष की उम्र पार करने के बाद भी अपने शरीर की शक्ति को आज के नवयुवकों की तरह व्यर्थ गँवाना नहीं चाहते। वे समय के अनुरूप अपने तन, मन और धन को क्रियाशील बनाए रखते हैं, ताकि चौबीस घंटे का समय खोया-बिखरा न रहे। यही तो सार्थक जीवन-पद्धति है। यहाँ नारदजी का कोई ज्ञान-सूत्र नहीं सुनाया जा रहा है। इतना ही समझना है कि शान्तचित्त जीवन बनाकर समय के साथ आगे बढ़ते चलना चाहिए।

आज भोर से ही गियानचन के परिवार में चहल-पहल है। सुख-दुःख के बीच सभी अपने-अपने काम में लगे हुए हैं। गियानचन की माँ सुदामा, बहू को प्रसव-पीड़ा आरम्भ होते ही आवश्यक तैयारी में जुटी हुई हैं। उसी तरह सुदामा के पति, अर्थात गियानचन के पिता, आदेशपाल की तरह घर के द्वार पर खड़े प्रतीक्षा कर रहे हैं कि जब जिस चीज की आवश्यकता पड़े, उसकी पूर्ति कर सकें।

पत्नी की पीड़ा देखकर गियानचन स्वयं भी पीड़ा और चिन्ता में डूबे हैं। साथ ही माता-पिता की आज्ञा को आँख मूँदकर शिरोधार्य करने के लिए भी तैयार हैं। उनकी चिन्ता का कारण यह है कि गाँव में अनेक स्त्रियों को प्रसव के समय मरते वे देख-सुन चुके हैं। इसलिए मन आशंका से घिरा है कि हो-न-हो, यदि पत्नी मर गई तो वे भारी विपत्ति में पड़ जाएँगे। दो वर्ष की बेटी है। यदि वह माँ-विहीन हो गई तो उसका ब्याह-दान भी हो पाएगा या नहीं?

अपनी स्थिति की ओर देखते हुए गियानचन सोचते हैं कि माता-पिता और बेटी की सेवा-टहल पति-पत्नी दोनों मिलकर करते हैं। यदि पत्नी न रही तो सोलहों

आना भार अकेले उन्हीं पर आ जाएगा। अभी तो अपने हिस्से का, अर्थात आधा भार कन्धे पर है, तभी दिन-रात चैन नहीं मिलता। जब सोलहों आना भार पड़ जाएगा, तब क्या दशा होगी?

चिन्तित गियानचन के मन में यह विचार भी उठता रहता है कि यदि भगवान ने बेटा दिया और वह जीवित रहा, तो तीन पीढ़ियाँ- पिता, स्वयं और पुत्र- जब एक ही पंक्ति में खड़ी होंगी, तभी बच्चे का आत्मभाव प्रवाहित होकर वृद्ध की आत्मा से जुड़ेगा और वृद्ध का आत्मबल कर्मरूप में प्रवाहित होते हुए बच्चे तक पहुँचेगा तथा उसे आगे के जीवन के लिए उद्वेलित करेगा। यही तो जीवन की धारा है, जो एक ओर प्रवाहित होते-होते समुद्र में मिल जाती है और दूसरी ओर धरती पर नए जीवन को जन्म देती चलती है।

संयोग अच्छा रहा। सावित्री ने पुत्र को जन्म दिया और परिवार में हँसी-खुशी छा गई। प्रसव-पीड़ा से व्याकुल सावित्री बेदम होकर हाँफ रही थीं, तो दूसरी ओर सुदामा नवजात शिशु की आरम्भिक देखभाल पूरी करने में थककर बेदम थीं। परिवार के सभी सदस्य जब अपने-अपने दायित्वों की पूर्ति में पूरी शक्ति लगाकर कर्मरत होते हैं, तभी परिवार सिर उठाकर दुनिया की ओर देखने की सामर्थ्य प्राप्त करता है।

यह अलग बात है कि दुनिया में जितना अँधेरा फैला है, उतना उजाला भी है, लेकिन अँधेरे ने अपना दाँव चलाकर अँधियारे का साम्राज्य फैला रखा है। कहीं धर्म से धर्मान्धता है, कहीं धन से धनान्धता, कहीं जातीय उन्माद है तो कहीं साम्प्रदायिकता। फिर भी सबके मन में यह भाव कहीं न कहीं रहता ही है कि शान्तचित्त होकर आनन्द से जीवन बिताना श्रेष्ठ जीवन है।

अब तक के जीव-जगत के इतिहास में मनुष्य सबसे श्रेष्ठ सृजन है। जन्म के साथ ही मनुष्य को बहुत कुछ मिलता है और कर्ता-धर्ता बनने की सामर्थ्य भी उसी में निहित रहती है। तब जीवन की कौन-सी ऐसी अभिलाषा शेष रह जाती है, जिसे मनुष्य प्राप्त न कर सके? खैर, जो है सो है, इन बातों से अभी गियानचन को क्या मतलब। उनके लिए इस समय इतना ही था कि सन्तानोत्पत्ति के समय पत्नी को असाध्य पीड़ा सहनी पड़ती है, जिसका फल मातृत्व के साथ भविष्य का रखवाला भी बनकर सामने आता है।

इसी बीच पुत्र-जन्म का समाचार सुनते ही गियानचन अपनी सारी चिन्ता भूलकर आनन्द में विभोर हो गए। उसी आनन्द-विभोर अवस्था में उनके मन में एक विचार वैसे ही अंकुरित हुआ, जैसे किसी परती खेत में कहीं कोई पौधा अचानक उग आए। विचार यह था कि बेटा धन है, महाधन है, लेकिन वह महाधन तभी बनेगा, जब महापथ पकड़कर महान कर्मों को सामने रखते हुए आगे बढ़ेगा। इसके लिए होश चाहिए। होश तभी आएगा, जब होश सँभालने वाला स्वयं होश में रहे, समझदारी से चले और उसे भी होश में चलने का बोध कराए।

अचानक गियानचन का मन पसीजकर उस सीमा तक पहुँच गया, जहाँ पिता और पुत्र के बीच की रेखा खिंची होती है। होश में आकर अपने पिता की ओर देखते हुए वे सोचने लगे कि जब उनका जन्म हुआ और विद्यालय जाने की उम्र आई, तब गाँव की कौन कहे, आसपास के पूरे इलाके में पढ़ने का साधन, अर्थात स्कूल तक नहीं था। इसलिए पिता उन्हें विद्यालय नहीं भेज सके। लेकिन अब वैसी स्थिति नहीं है। गाँव में भी अनेक प्रकार और अनेक स्तर के शिक्षण संस्थान खुल रहे हैं और कई खुल भी चुके हैं। जब परिवार में पुत्ररूपी धन आया है तो इस बच्चे को पढ़ाने के लिए वे अपना जीवन तक दाँव पर लगा देंगे।

मन में अपना संकल्प लिए गियानचन आगे बढ़े और दो वर्ष की बेटी के पास पहुँचे। पुत्र के आगमन की खुशी में उनका मन आग पर चढ़े लोहे के बर्तन में उफनते दूध की तरह उमड़ रहा था। जन्म के समय बच्चे को कितना कष्ट सहना पड़ता है और उसकी माँ कितनी पीड़ा झेलती है, यह तो वही जानती है। उस पीड़ा में पिता की भागीदारी कितनी होती है?

सुचित्रा के पास पहुँचते ही गियानचन के मुँह से निकला- “बेटी, खेलो।”

दो वर्ष की अबोध बच्ची दादी के पास जाकर पहले ही सुन चुकी थी कि बौआ आया है। इसलिए उसके बालमन में वैसी ही खुशी थी, जैसी भोर में सूर्य उगते ही जागते लोगों के मन में होती है। पिता के पूछने पर सुचित्रा ने उँगली से इशारा करते हुए कहा- “उस घर में बौआ है।”

बेटी की बात सुनकर पाँच बीघा जमीन जोतने वाले मध्यवर्गीय किसान परिवार में पले-बढ़े गियानचन की उमंग मानो आकाश छूने लगी। माँ के साथ

बेटी के मुँह से भी ‘बौआ’ सुनकर उनका मन और ऊँचा उठ गया। उसी उमंग में वे सोचने लगे कि जब वे स्कूल जाने योग्य हुए थे, तब गाँव की कौन कहे, पूरे आसपास के इलाके में एक भी स्कूल नहीं था। कहीं-कहीं संस्कृत विद्यालय और महाविद्यालय अवश्य थे, लेकिन उनकी पहुँच इतनी सीमित थी कि सार्वजनिक होते हुए भी उन्हें वास्तव में सार्वजनिक नहीं माना जा सकता था।

उनके सामने एक और प्रश्न उठा- विद्या के मूल स्वरूप को समझने का प्रश्न। विद्यालय की आवश्यकता क्यों है? जीवन में विद्या का क्या प्रयोजन है?

अब तक हजारों पीढ़ियों का वंशगत जीवन लगभग उसी स्थिति में चलता आया था, जैसा पशुओं का जीवन होता है। खैर, जो जहाँ जैसा है, रहे, उससे गियानचन को क्या लेना-देना। अपनी पीढ़ी के जीवन को बदलने वाले मोड़ पर खड़े गियानचन ने निश्चय किया कि बेटा जितना पढ़ना चाहेगा, वे उसे उतना पढ़ाएँगे।

उनका मन इतना उमंग से भरा था कि यह विचार ही नहीं आया कि किस तरह के जीवन के लिए कैसी विद्या आवश्यक है। उन्होंने मन ही मन इतना तय कर लिया कि उनकी पीढ़ी तक परिवार ने विद्यालय का मुँह तक नहीं देखा, लेकिन आगे की पीढ़ी को विद्यालय अवश्य दिखाना है। उनके मन में यही विचार ऊँचा उठता रहा कि बच्चा जितना पढ़ना चाहेगा, पढ़ेगा। आज के समय में विद्यालय कितने महँगे हैं, इसका अनुमान गियानचन को कहाँ था। वे तो साधारण विद्या के सहारे अपना जीवन बिताते आए थे।

रघुनाथ के जन्म को तीन महीने हो गए। इस बीच परिवार की जो जीवन-चर्या बदल गई थी, वह धीरे-धीरे अपनी पूर्वावस्था में लौटने लगी। इसके साथ ही विचार-भूमि में भी परिवर्तन आया, अर्थात सोचने की प्रक्रिया बदलने लगी। विचार करने की प्रक्रिया भी प्रत्येक व्यक्ति की अपनी परिस्थिति के अनुकूल होनी चाहिए। ऐसा न हो तो कभी पिछली पीढ़ियों की देखा-देखी हमारे पैर पीछे खिंचते जाएँगे और कभी सामने खड़े पहाड़ को देखते ही रह जाएँगे।

गाँव के बगल में एक ‘पमरिया गाँव’ है। उसे पमरिया गाँव कहने के दो कारण हैं। पहला, आसपास के दूसरे गाँवों में पमरिया जाति के लोग नहीं हैं।

दूसरा, पूरे इलाके में पमरिया का पारम्परिक काम भी इसी गाँव के लोग करते हैं।

भोर होते ही पाँच लोगों का पमरिया दल गियानचन के यहाँ पहुँच गया। डुग्गी बजाते हुए वे 'बच्चा की जय हो, बच्चा की जय हो!' कहते आँगन में नाचने लगे। दूसरे आँगनों से भी एक-दो लोग वहाँ आने लगे।

पिछले तीन महीनों की भाग-दौड़ ने गियानचन के परिवार को खेती-पथारी से लेकर घर-आँगन के काम तक प्रभावित किया था। रोजमर्रा की जीवन-चर्या भी इससे अच्छी तरह प्रभावित हुई थी। एक ओर परिवार का काम बढ़ा था, दूसरी ओर नए-नए कामों के खर्च बढ़ने से आर्थिक स्थिति पर भी असर पड़ा था। इसी कारण गियानचन के विचारों में भी कुछ ठहराव-सा आ गया था।

पमरियों की जयकार सुनते ही परिवार में माता-पिता से लेकर दादा-दादी तक सबका मन उमंग से भर उठा। रघुनाथ की खुशी में अपनी-अपनी प्रसन्नता और सामर्थ्य के अनुसार धन लुटाने का उत्साह सबमें जाग गया। पमरिया एक-दो की संख्या में भी आते थे और उसे सामान्य आगमन माना जाता था, लेकिन पाँच लोगों का दल आने का अर्थ था साज-बाज के साथ पूरा नाच-गान। इससे परिवारवालों के मन में और हलचल मच गई। एक ओर पमरिया नाच की व्यवस्था करनी थी, दूसरी ओर उनके खाने-पीने की और तीसरी ओर गाँव से नाच देखने आए लोगों के लिए देखने-बैठने की व्यवस्था भी करनी थी।

तीन महीने का रघुनाथ आज सबके बीच वैसे सामने आया, जैसे कोई विद्यार्थी हाईस्कूल की परीक्षा तक ओझल-सा रहे और बोर्ड की परीक्षा में अच्छा परिणाम पाकर परिवार की कौन कहे, पूरे जिले-जवार में चमक उठे। रघुनाथ के साथ भी कुछ ऐसा ही हुआ। परिवार के ही नहीं, दूसरे घरों के लोग भी उसका बधैया नाच देखने आए और दान-पुण्य के रूप में अन्न तथा पैसे लुटाने लगे।

लगभग एक महीने बाद, पमरिया नाच के पश्चात हिजरों, अर्थात किन्नरों का दल भी पहुँचा। इलाके में पमरियों की अपेक्षा हिजरों की संख्या कम थी, इसलिए हिजरा नाच साल में एक बार पूरे गाँव के लिए होता था। इसके विपरीत पमरिया अधिक संख्या में थे, इसलिए उनका नाच साल की कौन कहे, महीने में

भी कई दिन गाँव में हो जाता था। यह बच्चों के जन्म पर निर्भर करता था। जितने बच्चों का जन्म, उतनी बार पमरिया नाच।

खैर, जो होता है सो होता है। आज गियानचन के आँगन में रघुनाथ का बधैया नाच हो रहा था, इसलिए पूरा परिवार खुशी और उल्लास में झूम रहा था। वह भी पुत्र-जन्म के अवसर पर। बेटा ऐसा धन माना जाता आया है, जो जीवन-मरण में परिवार का उद्धार करता है। लेकिन जिसे हम केवल 'बेटा' समझकर भ्रम में रहते हैं, बेटा केवल उतना ही नहीं है। जिस तरह छोटे से छोटे या बड़े से बड़े मकान की नींव मिट्टी के भीतर होती है और उसी पर विशाल से विशाल भवन का निर्माण होता है, उसी तरह उच्च से उच्च और निम्न से निम्न मनुष्य के जीवन की नींव भी बच्चा ही है। इसलिए किस जीवन के लिए कैसी नींव डाली जाए, यह कोई साधारण प्रश्न नहीं है।

समाज के परिवार वैसे ही परती खेत की तरह बने हुए हैं, और वह भी ऐसे परती खेत की तरह जिसमें जोत-कोड़ के अभाव में बीज तक नहीं पड़ा। गाँव-समाज की स्थिति शिक्षा के क्षेत्र में भी कुछ ऐसी ही है। आजादी के पचहत्तर वर्ष बाद भी क्या गाँव-समाज शिक्षा के क्षेत्र में उस स्थिति तक पहुँच पाया है कि गाँवों में शिक्षा की जितनी आवश्यकता है, उसका चौथाई भाग भी पूरा हो गया हो? समस्याएँ हजारों हैं, लेकिन समाधान के रास्ते भी लाखों हैं। आवश्यकता केवल दोनों के बीच सामंजस्य स्थापित करने की है।

हिजरा-हिजरनियों के गीत और बधैया की बोली कानों में पड़ते ही गियानचन कुछ क्षण के लिए सब कुछ भूल गए। उनके मन में बेटे का बालरूप नाचने लगा। बेटा धन है, सबसे बड़ा धन, लेकिन वह भगीरथ की तरह आकाशगंगा को धरती पर कैसे उतार सकेगा? इसके लिए जिस तरह भगीरथ की सात पीढ़ियों के पूर्वजों ने साधना की, उसी तरह की साधना की आवश्यकता उन्हें भी है।

अब तक का ग्रामीण सामाजिक जीवन, अर्थात जीवन जीने का जो ढंग रहा, उसमें ज्ञानार्जन की कोई स्पष्ट दिशा नहीं थी। ऊपर से हजारों वर्षों की गुलामी ने उसे और मटियामेट कर दिया। लोगों का विचार-क्षेत्र सिकुड़ते-

सिकुड़ते इतना क्षीण हो गया कि जीवन के वास्तविक प्रकाश पर दृष्टि ही नहीं जा रही थी।

गियानचन के मन में बेटे के लिए रोपा गया संकल्प- 'बेटा जितना पढ़ना चाहेगा, उसे उतना पढ़ाऊँगा'- नई कोंपलों और नए पल्लवों के साथ फिर फूट पड़ा।

हिजरों के मुँह से निकली सहज धुन ने गियानचन के मन को इस तरह धुन दिया, जैसे धुनकी पर चढ़ी रूई भीतर तक धुन जाती है। अपने संकल्प को मन में और दृढ़ करते हुए उन्होंने रघुनाथ के लिए मन ही मन हिजरों से आशीर्वाद माँगा कि जिस तरह यह लाल जन्मा है, उसी तरह इस लाल के ललियाए हुए मुख की लाली सदा अपनी आँखों के सामने देखता रहूँ।

गियानचन मुँह खोलकर कुछ कह नहीं सके। हिजरों का आशीर्वाद सुनकर मन की बात मन में ही इस तरह भर गई कि कुछ कहने की आवश्यकता ही नहीं रही। आवश्यकता होती भी कैसे? बिना माँगे ही इतना आशीर्वाद मिल गया था। समाज में वे दिन-रात 'तीन लेंगे कि तेरह' जैसी बातें सुनते ही रहते थे।

फिर उनका संकल्प मन में जाग उठा- 'रघुनाथ जितना पढ़ना चाहेगा, पढ़ाऊँगा।' संकल्प जागते ही उनके मन ने मान लिया कि बेटा-बेटी समाज की सम्पत्ति हैं। अपना पेट और अपना जीवन तो कुत्ते-बिल्लियाँ भी पाल लेते हैं, लेकिन मनुष्य केवल इतना भर नहीं है।

गियानचन का मन पहले ही चूल्हे पर चढ़े लोहे के बर्तन में दूध की तरह उफन रहा था। अब उसमें यह विचार भी उठा कि वर्षभर में आने वाले हिजरों और पमरियों से बेटे के लिए बधाई तो सुन ही ली, क्यों न समाज के मुँह से भी बधाई ले ली जाए। कोई व्यक्ति समाज का अंग तभी बनता है, जब वह समाज को मेघडम्बर की तरह अपने सिर पर धारण करे।

लेकिन समाज को मेघडम्बर की तरह सिर पर लेने से पहले यह भी देखना आवश्यक है कि जिस मेघडम्बर को ओढ़कर वर्षा के पानी से बचना चाहते हैं, उसमें कहीं छेद या टूट-फूट तो नहीं है। यदि ऐसा हुआ तो पानी से बचना कठिन हो जाएगा।

यहाँ पहुँचकर गियानचन का मन ठिठक गया। ठिठकते ही उन्हें लगा कि

समाज भी अपने सूत्रों में बँधा चलता है। उसके सूत्रों में कहीं-कहीं उलट-पुलट क्यों न हो, केवल इसी कारण समाज-सूत्र को दोषी नहीं ठहराया जा सकता। समय कितना ही प्रतिकूल क्यों न हो, ऐसा भी नहीं कि माता-पिता की सेवा माता-पिता की तरह होती ही नहीं। फिर भी ऐसा जीवन भी समाज में चलता दिखाई देता है, जिसमें कुलश्रेष्ठ माता-पिता को कुलहीन नहीं बनाया जाता। मिथिला की धरती कितनी ही शक्तिहीन क्यों न हो जाए, वह न कभी बाँझ हुई है, न होगी। मिथिला की उर्वरा-शक्ति इसी धरती के गर्भ में छिपी है। ऐसी भूमि संसार में और कहाँ है?

इतना सोचते-सोचते गियानचन के विचारों को विराम मिला। विराम मिलते ही उन्होंने मन में कहा कि पुत्र-जन्म की खुशी में समाज को भोज भी खिलाएँगे।

भोज की बात आते ही गियानचन का मन उसके आयोजन पर विचार करने लगा। अब तक उनके यहाँ भात का भोज होता था या पूड़ी-मिठाई का। कुछ समय पहले तक पूड़ी-तरकारी कहा जाता था और अब पूड़ी-मिठाई अथवा चूड़ा-दही का भोज होता है। तीनों का विन्यास एक-दूसरे से जुड़ा हुआ भी है और अलग-अलग भी। इसलिए उन्होंने सोचा कि क्यों न सबमें सामंजस्य बैठाकर खीर-पूड़ी का भोज किया जाए, जो इतिहास भी रचे और लोगों की जुबान पर भी रहे।

खीर-पूड़ी के भोज की योजना बनाते हुए गियानचन अपने ही मन में कहने लगे- “भात के भोज में दाल के साथ उसका संयोग होता है। वही भात दूध के साथ मिलते ही खीर बन जाता है। उसी तरह पूड़ी-तरकारी हो या पूड़ी-मिठाई, पूड़ी तो अपने रूप में रहती ही है और मिठाई दूध के साथ मिलकर खीर का रूप ले लेती है। यही तो जीवन है कि आरम्भ के ‘अ’ अक्षर जैसे अज्ञानी से चलते हुए अन्तिम ‘ज्ञ’ की तरह ज्ञानी बनकर ज्ञानपूर्ण जीवन धारण करें।”

अचानक गियानचन के मन ने मान लिया कि क्यों न पुत्र-जन्म के उपलक्ष्य में अपनी श्रद्धा इसी रूप में अर्पित की जाए। ❑

दूसरा पड़ाव

रघुनाथ जब एक वर्ष का हुआ, तब सुदामा और दीनबन्धु दोनों का देहान्त हो गया। रघुनाथ के जन्म के समय से ही सुदामा अधिकतर उसे अपनी छाती से लगाए रखती थीं। हृदय से लगे रघुनाथ के बालरूप में वे अनेक रंगों के आशा-पुष्प देखती रहती थीं। उन्हीं आशाओं से अनेक रंगों वाले बाल-सूर्यों के प्रकाशित रूप उनकी आँखों के सामने नाचने लगते। वे सोचतीं कि अभी बच्चे को पालने में सुलाकर, सीक-सीकनी लटकाकर, अपने मुँह और हाथ के हाव-भाव दिखा-दिखाकर खेलाती हूँ; यही जब तीन वर्ष का होगा, तब इसे बाप-पुरखों के सँजोए किस्से-कहानियाँ सुनाऊँगी। साँझ की संध्या और भोर की पराती के साथ वर्ष के बारहों महीनों के बारहमासा, छहमासा, चौमासा तथा सोहर-समदाउन भी सुनाऊँगी।

सोहर का ध्यान आते ही सुदामा गुनगुनाने लगीं- “ललना हे...।”

एक वर्ष बीतते-बीतते जिस तरह रघुनाथ का शरीर बढ़ा, उसी तरह गियानचन को भी अपने पितृ-दायित्व का आभास होने लगा। लेकिन वह आभास अभी केवल रघुनाथ तक सीमित था। अपने पिता के साथ गियानचन का जो जीवन बचपन से आरम्भ होकर काम-काज के रूप में अब तक चलता आया था, उसमें रत्ती भर भी परिवर्तन नहीं हुआ था। परिवार की गाड़ी जिस तरह धीरे-धीरे चलती आ रही थी, उसी तरह चल रही थी।

फिर भी उनके मन में यह बात थी कि दुनिया जीवन के लिए जितनी सत्य है, उतनी ही मिथ्या भी। मनुष्य के जीवन का समय लोहे के इंजन की तरह निश्चित नहीं है; शरीर से प्राण कभी भी फुस्स हुए गुब्बारे की हवा की तरह निकल सकते हैं।

एक वर्ष के रघुनाथ को सामने देखकर गियानचन का मन आह्लादित हो

उठा। उन्होंने पत्नी को पुकारते हुए कहा- "जरा इधर आना।"

पति की आवाज में कुछ कड़ापन सुनकर सावित्री पास आईं और बोलीं-

"क्या कह रहे हैं?"

रघुनाथ के सम्बन्ध में गियानचन ने जो विचार मन में गहराई से रोप रखा था, उसे अब तक अपने अतिरिक्त किसी और के कान तक नहीं पहुँचने दिया था। लेकिन एक वर्ष के रघुनाथ को देखकर उनके मन ने मान लिया कि शैशव के पहले वर्ष में आने वाले रोग-व्याधियों से वह पार हो चुका है। दूसरे वर्ष में प्रवेश करते-करते बच्चे के शारीरिक रोग भी धीरे-धीरे घटने लगते हैं और वह कई रोगों से मुक्त हो जाता है।

गियानचन बोले- "जिस दिन रघुनाथ का जन्म हुआ, उसी दिन मेरे मन में एक विचार रोपा गया था। छठिहार तक आते-आते वह छठी रात का विचार बनकर मन में जम गया।"

पति की बात सावित्री कुछ समझीं, अधिक नहीं समझीं। इसलिए सीधे-सादे शब्दों में बोलीं- "एक विचार का क्या अर्थ हुआ? दुनिया तो विचारों की ही है। विचार करना ही है, लेकिन वह तो दुनिया भर का विषय हुआ। आपके मन में कौन-सा विचार रोपा गया है, वही कहिए न। इसमें झिझकने की क्या बात है? अपना परिवार है। बच्चों को मिलाकर अभी चार लोग हैं। जब माँ-बाबू जीवित थे, तब चार से छह थे; अब छह से चार हो गए हैं। फिर समय आएगा तो तीन से तेरह भी होंगे।"

पत्नी की बात गियानचन ने कुछ सुनी और कुछ अनसुनी कर दी। कारण यह था कि जब-जब रघुनाथ से जुड़ा अपना संकल्प उनके मन में उठता, तब वे दूसरी बातों के प्रति लगभग अनसुने हो जाते; और जब विचार स्थिर हो जाता, तब उन्हें सब कुछ सुनाई देने लगता।

भाव-विह्वल होकर गियानचन बोले- "मैं स्वयं एक अक्षर लिखने और पोथी पढ़ने का ज्ञान नहीं पा सका। समय भी अनुकूल नहीं था, इसलिए ऐसा नहीं हो सका। लेकिन अब वैसी स्थिति नहीं है। रघुनाथ जितना पढ़ना चाहेगा, उतना पढ़ाऊँगा।"

अब तक सावित्री पढ़ने-लिखने के मर्म को नहीं समझ पाई थीं। इसलिए आश्चर्य से बोलीं-

“आपने क्या कहा, वह मेरे मन में ठीक से नहीं बैठा।”

अपने बच्चे की पढ़ाई के विचार में गियानचन का मन इतना ऊँचा उठ गया था कि वे मानो अपनी आँखों से बेटे को आकाश की ऊँचाई तक पहुँचते देखना चाहते थे। पत्नी का प्रश्न सुनकर उनके मन को और बल मिला। वे बोले-

“अपना बेटा है, जैसा बनाएँगे वैसा बनेगा।”

पति की अधूरी-सी बात सावित्री ठीक से नहीं समझीं। झिझकते हुए बोलीं- “क्या कोई दूसरे के बेटे को बाँटकर ले जाता है, जो अपना और पराया कह रहे हैं?”

अपने बिखरे विचारों को समेटते हुए गियानचन ने रघुनाथ की ओर उँगली से संकेत कर कहा- “अभी इस बालरूप अर्जुन के प्रकाशदाता और प्रथम गुरु कृष्ण हम दोनों ही तो हैं।”

सावित्री माँ-बेटे के बीच गुरु-शिष्य वाली बात नहीं समझ रही थीं, लेकिन इतना अवश्य समझती थीं कि सामने जो बच्चा है, अभी उसका सर्वेसर्वा, उसका सब कुछ, वे दोनों पति-पत्नी ही हैं। पति-पत्नी मिलकर ही तो एक संसार रचते हैं और उसका निर्माण भी करते हैं।

मुस्कराते हुए सावित्री बोलीं- “केवल गुरु ही क्यों, जन्मदाता के साथ कर्मदाता भी तो हम ही हुए।”

पत्नी के मुँह से निकले ‘जन्मदाता-कर्मदाता’ शब्द गियानचन के मन में नगाड़े की आवाज की तरह ठनक उठे। वातावरण के अनुसार जैसे मन ठनकता है, वैसे ही मन के अनुसार वातावरण भी अपना स्वर बदलता है। गियानचन के साथ भी ऐसा ही हुआ। बिना अधिक विचार किए सावित्री की बात को हृदय में उतारते हुए वे बोले-

“रघुनाथ कुछ भी हो, अपना तो बेटा-धन है ही। यह बेटा-धन सर्वमान्य धन कैसे बने, इसका विचार हम दोनों को ही करना होगा।”

जैसे कोई अपने ऊपर रखा बोझ उतारकर दूसरे के हाथ में दे दे, वैसे ही सावित्री ने अपना भार बाँटते हुए कहा-

"दो बच्चे हैं। एक का भार आपके कन्धे पर हुआ और एक का मेरे ऊपर।"

पत्नी की बात सुनकर गियानचन ने स्वयं अपने मन को चेताया और कहा-

"स्त्री और पुरुष के बीच जिस तरह सैकड़ों प्रकार के सम्बन्ध हैं, उसी तरह सैकड़ों प्रकार के अन्तर भी हैं। स्वभाव से पुरुष जितना कर्कश होता है, उसकी अपेक्षा स्त्री कुछ नरम होती ही है। लेकिन दोनों के बीच सम्बन्धों की जो जीवनधारा बहती है, उसी में बेटा-बेटी भी तैरते हुए आगे बढ़ते हैं। इसलिए हम दोनों का अलग-अलग एक-एक बच्चे का भार लेना उचित नहीं होगा। इससे अच्छा होगा कि अपने-अपने दायित्व के अनुसार हम दोनों मिलकर दोनों बच्चों का भार उठाएँ।"

यह विचार आते ही गियानचन के मन में एक दूसरी समस्या आ खड़ी हुई। अभी दोनों पति-पत्नी जीवित हैं, इसलिए ऐसा सोचा जा सकता है, लेकिन ऐसे बच्चे भी तो हैं जिनमें किसी की माँ नहीं है और किसी का पिता नहीं है। वहाँ ऐसा बँटवारा कैसे होगा?

अगले ही क्षण गियानचन का मन तीसरी दिशा में सरक गया। मन ने कहा, ऐसे बच्चे भी तो हैं जिनके माता-पिता दोनों मर चुके हैं और उनका पालन-पोषण कोई दूसरा करता है। दूसरे लोग भी कई प्रकार के होते हैं, जिनमें हित और अहित दोनों जन्म लेते हैं। जंगली जानवरों के बच्चों की तरह सभी बच्चे जीवित ही नहीं रह जाते, कुछ मरते भी हैं। गियानचन जिधर देखते, उधर उनके सामने लम्बी-लम्बी पाँतें, बड़े-बड़े पेड़-वृक्ष और समुद्र-पहाड़ तक आ-आकर खड़े हो जाते। अचानक उनका मन अपने परिवार की सीमा पर आकर ठहर गया। बेटे-बेटी के रूप और प्रभाव से भावुक होकर वे बोले-

"जब हम दोनों जीवित हैं, तब बेटे का भार मेरा और बेटी का भार आपका क्यों? इतना ही हो कि मेरे काम की देखभाल आप रखें और आपके काम की मैं। कहीं ऐसी कोई चूक न हो, जिससे बच्चों का जीवन प्रभावित हो।"

पुरुष और स्त्री से बने परिवार में यदि पुरुष अपने अधिकार और कर्तव्यों

का निर्वाह ईमानदारी से करे और स्त्री भी अपने अधिकार-कर्तव्यों का पालन करे, तो निश्चय ही परिवार संसार के एक अंग के रूप में खड़ा हो जाता है। संसार की वस्तुएँ जैसे कड़वी हैं, वैसे ही मीठी भी। जिसे कड़वा लगेगा, उसे कड़वाहट अनुभव होगी और जिसे मीठा लगेगा, उसे मिठास। संसाररूपी समुद्र में गियानचन का मन ऊपर-नीचे होने लगा। उसी उथल-पुथल में महादेव का अर्द्धनारी रूप उनके सामने आ खड़ा हुआ। मन ने कहा- यही तो द्वैत और अद्वैत के बीच बहती धारा का एक घाट है।

अपने विचार में गियानचन पिता के रूप में बोल रहे थे, लेकिन अगले ही क्षण उनके मन ने उन्हें झिड़का कि अब तक अपने भीतर भी यह कमी रही है कि पति-पत्नी के रूप में परिवार का एक साझा विचार नहीं बना सके कि जन्म से कर्म और फिर फलने-फूलने तक परिवार का स्वरूप किस तरह बने। शरीर की बनावट में स्त्री और पुरुष के बीच लैंगिक भेद अवश्य है, लेकिन बाकी तो सब समान ही है। विचारों में जो दूरी दिखाई देती है, वह परिवार और समाज के परिवेश के प्रभाव से बनी है। सामाजिक परिवेश भी शासन-तन्त्र का एक रूप है।

माता-पिता जब माता-पिता के रूप में बच्चे के जन्म के आवाहन से ही अपने पारिवारिक दायित्वों को समय के अनुकूल जोड़ते हुए चलते हैं, तब बच्चा भी समयानुकूल अपने को बदलता चलता है। समय जब मोड़ पर आता है, तो अचानक अनेक परिवर्तन होने लगते हैं। उनसे समाज के साथ परिवार भी प्रभावित होता है और जब परिवार प्रभावित होगा, तो व्यक्ति भी अवश्य प्रभावित होगा। उसी प्रभाव को समयानुकूल बनाकर चलना सिखाना ही बेटे-बेटी का मार्गदर्शन है।

दर्शन का अर्थ देखना ही तो है, लेकिन देखने और देखने में भी अन्तर होता है। मनुष्य का जीवन-दर्शन सभी मनुष्यों का है, फिर भी उसे इस तरह काट-छाँट, छील-छालकर बदल दिया गया है कि कठपुतली के नाच की तरह यह समझना कठिन हो जाता है कि हम जीवित होकर उड़ रहे हैं या मृत होकर।

सावित्री बोलीं-

“बेटा यदि कुछ है तो पुरुष का बेटा है, लेकिन आया तो माँ के पेट से ही

है। तब किसी के पेट की बात छीनकर केवल अपने पेट की बात भरकर उसे अपने जैसा बना लेना कहाँ उचित है?"

पत्नी को अपने पक्ष में आते देखकर गियानचन बोले-

"अभी हम दोनों को दुनिया भूलकर अपनी दुनिया खड़ी करनी है। यदि अगली पीढ़ी के लिए ऐसा नहीं करेंगे, तो वह पीढ़ी भटक जाएगी।"

दूसरी बातों पर सावित्री का मन नहीं अटका, लेकिन गियानचन के मुँह से निकला यह वाक्य- "अगली पीढ़ी भटक जाएगी"- उनके मन में जैसे ठक-से लग गया। मन में आया कि यदि अगली पीढ़ी भटक जाएगी, तो परिवार ही नष्ट हो जाएगा। जब परिवार नष्ट हो जाएगा, तब अगली पीढ़ी का विकास कैसे होगा?

सावित्री का मन घोल-मट्ठे मिले पानी की तरह हो गया। फिर उसमें पानी नीचे बैठने लगा और मट्ठा ऊपर तैरने लगा। विस्मित होकर वे बोलीं-

"क्या मैं कभी आपके विचार से अलग हुई हूँ, जो अब हो जाऊँगी? इस घर-परिवार का कर्ता-धर्ता तो समाज आपको ही मानता है। स्त्री चाहे जितनी हो, मानी तो घर भर की ही जाती है।"

गियानचन बोले-

"अभी स्त्री-पुरुष की इस धारणा को छोड़िए। पुरुष भी स्त्रीवत् हो सकता है और स्त्री भी पुरुषवत्। इसका अर्थ यह नहीं कि स्त्री स्त्री नहीं रहती या पुरुष पुरुष नहीं रहता; वे अपने रूप में रहते ही हैं। समाज में अनेक प्रकार के परिवार बसते हैं और एक परिवार से दूसरे परिवार के बीच कुछ न कुछ अन्तर रहता ही है। आर्थिक क्षेत्र ऐसा क्षेत्र है, जो जीवन को सबसे अधिक प्रभावित करता है। उसी से अनेक प्रकार की विषमताएँ जन्म लेती हैं। एक समस्या का समाधान दूसरी समस्या को जन्म देने वाला भी हो सकता है। इसलिए उन सब बातों में अभी नहीं जाना है। अभी मेरे मन में केवल इतना है कि 'बेटे को उसकी इच्छा के अनुसार पढ़ाएँगे'- यह बात आपके मन में भी बैठ जाए।"

पति की बात सुनकर सावित्री विचारों की ऐसी धारा में बहने लगीं, जिसमें तरह-तरह के विचार उठने लगे। पहला विचार यह उठा कि जिस प्रकार पति के विचार को मन में स्थान देना पत्नी का पुनीत कर्तव्य है, उसी प्रकार पत्नी के विचार

को अपने मन में स्थान देना पति का भी कर्तव्य है।

अगले ही क्षण मन ने अपनी सामर्थ्य दिखाते हुए कहा कि जब तक पत्नी सोलहों आना पति की हथधरिया, अर्थात उसके हाथ के सहारे चलने वाली बनी रहेगी, तब तक उसके अपने विचार का जन्म कैसे होगा?

फिर उनके मन में आया कि अधिकांश लोगों को यह भ्रम है कि जिस तरह पुरुषप्रधान सत्ता रही है, उसी तरह झाँसी की रानी जैसी स्त्री-सत्ता भी परिवार-परिवार में रही है। लेकिन इतिहास ऐसा नहीं है। इतिहास यह भी बताता है कि जब विवाह-प्रथा का चलन नहीं था और जीवन खुला था, तब स्त्री-पुरुष के संयोग से जन्मी सन्तान की देखभाल, अर्थात उसकी सेवा, जन्म देने वाली माँ ही करती थी।

सावित्री विस्मित होकर बोलीं-

“विचार तो बहुत बढ़िया है, लेकिन आप ही बताइए, जिस दिन मेरा हाथ पकड़कर मुझे माता-पिता के घर से लाए थे, उस दिन क्या केवल आपने ही मेरा हाथ पकड़ा था और मैं अपनी मुट्ठी बाँधे बैठी थी?”

पत्नी की बात सुनकर गियानचन ठिठक गए। उनके अपने मन ने कहा कि पत्नी ठीक ही कह रही है। जिस तरह मैंने हाथ बढ़ाकर उसका हाथ पकड़ा, उसी तरह उसने भी अपना हाथ बढ़ाकर मेरा हाथ पकड़ा। विवाह क्या है? यही तो कि पुरुष और स्त्री संयुक्त रूप से एक स्वतन्त्र परिवार का निर्माण करें।

गियानचन के मन में यह बात भी आई कि जब दोनों के शरीर की बनावट एक ही तरह की है, तब सोचने-विचारने का क्षेत्र भी एक जैसा क्यों न हो? गियानचन को लगा मानो वे हार रहे हों। लेकिन रह-रहकर मन में यह भी उठता रहा कि पत्नी से मिली यह पछाड़ ऐसी पछाड़ है, जो जीवन भर जीवित रूप में साथ चलती रहेगी।

असमंजस में पड़े गियानचन की बोलती बन्द हो गई। कभी-कभी मन में यह भी उठता कि जो पत्नी अब तक दबकर, मानो जाँघ के नीचे रही, आज वही ऊपर उठकर बोल रही है। इसी बीच टोकते हुए सावित्री बोलीं-

“इस तरह गुमसुम क्यों हो गए? जब घरवाली के सामने ही चुप्पी साध

लेंगे, तब दुनिया के सामने मुँह उठाकर कैसे चलेंगे?"

अपने कदम कुछ पीछे खींचते हुए गियानचन बोले-

"आपने ऐसा विचार दिया कि जैसे कोई यात्री सरोवर में नाव पर चढ़कर उसकी सैर करता है, वैसे ही मेरा मन भी परिवार के विचारों की धारा में हिलोरें लेने लगा है। अब आप ही बताइए कि परिवार आगे कैसे बढ़े?"

अपने दायित्व की गम्भीरता समझते हुए सावित्री बोलीं-

"परिवार का चलना कर्म से जुड़ा है। उस कर्म को हम दोनों एकमत होकर, दोनों का एक विचार बनाकर, अतीत से भविष्य तक को ध्यान में रखते हुए आज की परिस्थिति को ठीक तरह समझकर आगे बढ़ाएँ, तभी परिवार ठीक तरह चलेगा।"

सावित्री की बात से प्रसन्न होकर गियानचन बोले-

"दुनिया में जहाँ जो होता है, वह वहीं का विषय है। वहाँ का सामाजिक ढाँचा क्या है और अपने समाज का ढाँचा क्या है, उसी के अनुकूल हमें अपने को बनाकर चलना चाहिए।"

पति की बात सावित्री के मन में बैठ गई। उनका ध्यान बेटे की ओर गया। रघुनाथ को देखते हुए वे बोलीं-

"जैसे दो, तीन, चार या पाँच लोगों का समूह किसी निश्चित कार्य को संकल्प के रूप में अपने विचार में लेकर आगे कदम बढ़ाता है, वैसे ही कदम बढ़ाते हुए जीवन की मंजिल तक पहुँचना होगा। रघुनाथ को उसकी इच्छा के अनुसार पढ़ाएँगे- यही तो हम दोनों के बीच का संकल्प हुआ।"

पत्नी की बात सुनकर गियानचन का मन उल्लास से भर उठा। ❑

तीसरा पड़ाव

रघुनाथ साढ़े चार वर्ष का हो गया। उसके मुँह से अब स्पष्ट बोली निकलने लगी थी और वह घर-आँगन के छोटे-छोटे कामों में भी माता-पिता का हाथ बँटाने लगा था। चैत्र मास की एक सुबह लगभग दस बजे गियानचन कहीं से आए और पत्नी से बोले-

"एक लोटा पानी ले आओ।"

पिता की बात सुनकर रघुनाथ लोटे में पानी लेकर उनके पास पहुँच ही रहा था कि सावित्री भी वहाँ आ गईं। पति पर दृष्टि पड़ते ही सावित्री के मन में जो भाव उठा, वही पत्नी को देखकर गियानचन के मन में भी उठा। दोनों के मन में एक ही विचार आया कि यही तो परिवार है और यही सखा-सन्तान का साथ है। परिवार का प्रत्येक सदस्य जब अपनी शक्ति के अनुसार काम सँभालने लगता है, तभी परिवार के छूटे-बिखरे काम सँभलते हैं। परिवार कोई हँसी-ठट्ठा नहीं है। पाँच सदस्यों के परिवार में भी उतनी ही आवश्यकताएँ होती हैं, जितनी राजसत्ता सँभालने में राजकाज की। परिवार के आवश्यक कामों को करते-सँभालते न चलें तो उनका फल कैसे मिलेगा? फल अच्छा भी हो सकता है और बुरा भी, लेकिन वह अभी अलग विषय है। अभी इतना ही कि परिवार की प्रत्येक आवश्यकता को जब परिवारजन अपनी शक्ति के अनुसार पूरा करने लगते हैं, तभी परिवार अपने बल पर खड़ा होता है। यदि प्रत्येक परिवार का प्रत्येक सदस्य अपने परिवार को सही दिशा में खड़ा कर ले, तो देश भी निश्चित रूप से खड़ा हो जाएगा। प्रश्न यह है कि कोई व्यक्ति अपने परिवार को गिरा हुआ देखकर प्रसन्न होता है या खड़ा हुआ देखकर? यही समाज का रहस्य है। सबके मन में एक ही इच्छा रहती है कि अपना और अपने परिवार का कल्याण हो, फिर भी यह रहस्य बना हुआ है कि सबके चाहने पर भी ऐसा हो क्यों नहीं पाता।

पानी पीकर गियानचन बोले-

"रघुनाथ साढ़े चार वर्ष का हो गया है। छह महीने बाद उसका नाम स्कूल में लिखवा देंगे।"

अपने गर्भ से जन्मे बच्चे के विद्यालय जाने की बात सुनते ही सावित्री अपने भीतर इस तरह खो गईं कि पति के विचार से आगे उनकी दृष्टि वहाँ जा पहुँची, जहाँ पढ़े-लिखे बेटे को देखकर माता-पिता का मन पहुँच जाता है। विचारों के वन में भटकती सावित्री कुछ बोल न सकीं। पत्नी को मौन देखकर गियानचन के मन में आया कि शायद वह बेटे के विद्यालय-प्रवेश की बात सोच रही है, इसलिए चुप है।

अचानक सावित्री बोलीं-

"छह महीने की प्रतीक्षा क्यों कर रहे हैं? आज ही बच्चे का विद्यालय में प्रवेश क्यों न करा दें?"

लकीर के फकीर बने गियानचन बोले-

"पाँच वर्ष की आयु पूरी होने के बाद ही बच्चे का विद्यालय में प्रवेश कराना सब उचित मानते हैं।"

कातिक मास के हिसाब से रघुनाथ छह महीने पहले ही, अर्थात चार वर्ष की आयु पूरी होने के बाद, विद्यालय में प्रवेश योग्य हो गया था, लेकिन गियानचन के मन में बैठी पाँच वर्ष की सीमा बाधा बनी हुई थी। आज के परिवेश में तीन वर्ष की आयु के बच्चों का भी विद्यालय में प्रवेश होने लगा है, लेकिन कुछ समय पहले तक पाँच वर्ष की सीमा मानी जाती थी। तीन और पाँच वर्ष की आयु के बीच मुख्य प्रश्न कुपोषण और सुपोषण का है। आज बच्चों का जैसा पोषण होने लगा है, पहले उस अनुपात में नहीं होता था। कुपोषण में पला बच्चा शारीरिक रूप से विद्यालय जाकर अध्ययन करने योग्य नहीं हो पाता था।

सावित्री बोलीं-

"यदि छह महीने पहले ही रघुनाथ का विद्यालय में प्रवेश करा दिए होते, तो अब तक वह अपना नाम-गाँव सीख ही चुका होता। इसलिए...।"

‘इसलिए’ कहकर सावित्री चुप हो गईं, लेकिन वही ‘इसलिए’ शब्द गियानचन के सिर में तीर की तरह लगा। वे एक ही स्वर में तीन-चार बार बोले-

“इसलिए... इसलिए... क्या इसलिए?”

गियानचन के मन का रोष देखकर सावित्री बोलीं-

“अच्छा विचार जब भी मन में आए, उसी समय अवसर पाकर उसे कार्यरूप देना शुरू कर देना चाहिए। उसमें तनिक भी विलम्ब नहीं करना चाहिए।”

अपने मन का आक्रोश झाड़ते हुए गियानचन बोले-

“समाज में यही माना जाता है कि पाँच वर्ष की आयु पूरी होने के बाद ही बच्चा विद्यालय जाने योग्य होता है।”

जैसे आम के पेड़ पर बिना निशाना साधे फेंका गया ढेला किसी पके आम को तोड़कर गिरा दे और ढेला फेंकने वाला उसे अपनी सफलता मान ले, उसी तरह सावित्री ने बिना किसी निश्चित लक्ष्य के प्रश्न उछाल दिया-

“यदि समाज में यह सर्वमान्य है कि पाँच वर्ष के बाद ही बच्चे का विद्यालय में प्रवेश हो, तो फिर दाखिले की उम्र में यह चोरा-नुक्की क्यों होती है?”

यहाँ यह नहीं कहा जा रहा कि नौकरी-संस्कृति ने ही ऐसी प्रवृत्ति को जन्म दिया है।

सावित्री की बात गियानचन ठीक से नहीं समझ पाए, क्योंकि ‘चोरा-नुक्की’ सुनते ही उनका मन बच्चों के चोरा-नुक्की वाले खेल की ओर चला गया। कुछ उलझे मन से उन्होंने पूछा-

“कैसी चोरा-नुक्की?”

जैसे हाथ में कोई इच्छित वस्तु आ जाने पर मन प्रसन्न हो उठता है, वैसे ही सावित्री का मन भी प्रसन्न हो गया। मुस्कराकर बोलीं-

“बहुत से गाँव ऐसे हैं जहाँ विद्यालय नहीं है। संयोग से जब वहाँ विद्यालय खुलता है, तब पढ़ने वाले बच्चे उसी में प्रवेश लेंगे न?”

गियानचन बोले-

"हाँ।"

पति के मुँह से 'हाँ' सुनते ही सावित्री मुस्कराकर बोलीं-

"जिस क्षेत्र में स्कूल-कॉलेज खुलता है, उसी क्षेत्र के बच्चे उसमें प्रवेश लेते हैं। लेकिन बच्चे-बच्चे में अन्तर तो होता ही है। कुछ ऐसे होते हैं जिनका ध्यान पढ़ने-लिखने की ओर जाता है और कुछ का नहीं जाता। अब तक विद्यालयों में यही देखा गया है कि गाँव में विद्यालय रहने पर भी पढ़ने वालों की संख्या बहुत अधिक नहीं होती। जिनका मन पढ़ाई-लिखाई में नहीं लगता, उनका मन दूसरे कामों में लगता है और वे गाय-भैंस चराने जैसे कामों में अधिक रुचि लेते हैं। उसी तरह ऐसे बच्चे भी होते हैं जिनका मन गाय-भैंस चराने में नहीं लगता, बल्कि विद्यालय की पढ़ाई में लगता है।"

पत्नी की बात सुनकर गियानचन की आँखों की ज्योति जुगनू की तरह टिमटिमाने लगी। उनके मन में आया कि जीवन के लिए दोनों की आवश्यकता है। केवल पढ़-लिख लेने से जीवन नहीं चलेगा और केवल काम करते रहने से भी नहीं। दोनों को जीवन के अनुकूल मिलाकर चलने से ही जीवन बनेगा। इसे भक्तियोग भी कहा जाता है। ज्ञान और कर्म का योग ही तो भक्तियोग है।

किसी क्षेत्र में विद्यालय खुलने पर अधिक आयु वाले लोग भी दाखिले के लिए अपनी उम्र अपने अनुकूल बनाकर प्रवेश ले लेते हैं। उसी तरह ऐसे बच्चे भी होते हैं जिनमें विद्यालय जाने की जिज्ञासा होती है, लेकिन आयु कम रहती है। वे भी अपनी उम्र बढ़ाकर प्रवेश लेते हैं। साथ ही ऐसे बच्चे भी होते हैं जिनकी आयु निर्धारित सीमा के ठीक अनुरूप होती है।

अचानक गियानचन का मन ठहर गया। मन में आया कि जब पति-पत्नी के बीच केवल छह महीने का मतभेद है, तब क्यों न रघुनाथ को ही बीच में निर्णायक बनाकर पूछ लिया जाए। जैसे पोखर की सीमा निर्धारित करने के लिए जाठि गाड़ दी जाती है, वैसे ही मान लें कि यहाँ तक समाज की मान्यता को स्वीकार किया और अब आगे का निर्णय अपने संकल्प से करेंगे।

गियानचन ने रघुनाथ की ओर मुँह घुमाकर कहा-

"बौआ, कल तुम्हारा नाम स्कूल में लिखवा देंगे।"

पिता की बात सुनकर रघुनाथ माँ की ओर देखने लगा। सावित्री ने आँखों के संकेत से अपने विचार की स्वीकृति दे दी। माँ का संकेत पाकर रघुनाथ बोला-

"बहुत बढ़िया।"

बेटे के मुँह से यह सुनकर गियानचन का मन खिल उठा। मन में विचार आया कि यदि परिवार में जीवन के अनिवार्य तात्त्विक कर्म को समझकर अपने को उससे जोड़ लिया जाए, तो यही पारिवारिक जीवन है। लेकिन स्वभाव और मुख्यतः परिवार की आर्थिक तंगी के कारण माँ का मन कई बार बच्चे की पढ़ाई-लिखाई की ओर न जाकर परिवार की दूसरी आवश्यकताओं की ओर भटकता रहता है। इसका अर्थ यह नहीं कि हर माँ का स्वभाव ऐसा ही होता है। सामाजिक परिवेश और विशेष रूप से पारिवारिक परिवेश का प्रभाव मनुष्य पर पड़ता ही है, जिससे विचारों का प्रवाह भी बदलता रहता है।

पति के विचार को और दृढ़ करते हुए सावित्री बोलीं-

"तो पक्का हो गया न! कल रघुनाथ का नाम स्कूल में लिखवा देंगे?"

गियानचन के मन में अब कोई दुविधा नहीं थी कि अगर-मगर करते। स्पष्ट शब्दों में बोले-

"हम दोनों के संकल्प का शिलान्यास कल निश्चित रूप से होगा।"

जैसे-जैसे दिन बीतता गया, परिवार के दूसरे कामों की ओर गियानचन का ध्यान बढ़ता गया और सुबह का विचार, अर्थात रघुनाथ को विद्यालय में प्रवेश दिलाना, ध्यान से उतरता गया। उतरते-उतरते इतना उतर गया कि खाने-पीने के बाद रात तक भी याद नहीं आया।

रात में जब गियानचन सोने के लिए बिस्तर पर सिरहाने सिर रखे, तभी अगले दिन का काम, अर्थात रघुनाथ का विद्यालय में प्रवेश, अचानक मन में कौंध गया। अच्छा ही हुआ कि दिन भर वह विचार भूला रहा, नहीं तो भविष्य, अर्थात कल के सपने पर ध्यान लगाए रहने से आज के जीवन के अनिवार्य काम प्रभावित होते। जब आज का काम ही बिगड़ जाएगा, तब जीवन में कटाव आएगा ही। वर्तमान ही भविष्य के सपनों तक पहुँचने का रास्ता बनाता है। यदि वर्तमान में ही कटाव आ जाए, तो आगे का रास्ता काँटों भरा होगा ही।

अचानक गियानचन ने मन ही मन कहा, व्यर्थ ही किस उलझन का सिरा पकड़कर बैठा हूँ? रघुनाथ का नाम लिखाने उसकी माँ थोड़े ही विद्यालय जाएगी, मुझे स्वयं जाना होगा। विद्यालय में शिक्षक जब रघुनाथ की उम्र पूछेंगे, तब कह दूँगा कि हमारे जैसे परिवारों में न तो जन्मकुण्डली लिखी जाती है और न हम इतने पढ़े-लिखे हैं कि डायरी में जन्म-तिथि लिखकर रखें। आपके अभिलेख के अनुकूल जो उचित लगे, अपने विचार से लिख दीजिए।

सीधा रास्ता दिखाई देते ही गियानचन का मन स्थिर होने लगा। अभी पूरी तरह स्थिर भी नहीं हुआ था कि जैसे कोई पोखर में ढेला फेंक दे और पानी में हिलोर उठने लगे, वैसे ही उनके मन में फिर एक हिलोर उठी। विचार आया कि आज तक अपने परिवार की विद्या-भवन में प्रवेश की यात्रा खाली ही रही है। पिछली किसी पीढ़ी ने विद्यालय का मुँह नहीं देखा, लेकिन कल बेटे को विद्यालय का मुँह दिखाएँगे। निराशा के वन में गियानचन के सामने आशा की किरण फैल गई। यही तो परिवार के जीवन में परिवर्तन की सीढ़ी है। जीवन का परिवर्तन ही जीवन के विकास की प्रक्रिया है।

सिरहाने सिर रखे गियानचन को कब नींद आ गई, वे स्वयं भी नहीं जान सके। चेतनाशून्य साधक की तरह प्रकृतिस्थ हो गए। रात के बारह बजे उनकी पहली नींद अभी पूरी भी नहीं हुई थी। सामान्यतः उनकी पहली नींद पाँच-साढ़े पाँच घंटे की होती थी। इसी बीच छाती में कसक उठी। कसक उठते ही नींद टूट गई। पत्नी को पुकारते हुए बोले-

"जरा इधर आना।"

छाती की कसक की बात उन्होंने मन में ही इसलिए छिपाए रखी कि आधी रात का समय है। यदि दूसरे लोग सुन लेंगे तो व्यर्थ हल्ला करते हुए दौड़े आएँगे और पूछेंगे कि क्या हुआ। जीवन में ऐसे दर्द कोई एक दिन नहीं होते। कभी सिर में दर्द होता है, कभी पेट में और कभी शरीर के दूसरे अंगों में। कुछ अपने-आप ठीक हो जाते हैं और कुछ उपचार से।

सावित्री की नींद भी टूट चुकी थी, क्योंकि सोने के समय से ही उनका मन रघुनाथ पर नाच रहा था। नींद इतनी हल्की हो गई थी कि लगता था मानो भोर

हो गई हो। आज बेटे को विद्यालय में प्रवेश दिलाना है।

सावित्री का मन परिवार के दूसरे कामों से सोलहों आना हट चुका था। वह इसी विचार में लगा था कि अब तक रघुनाथ को जो कुछ बोध हुआ है, परिवार से लेकर टोले-पड़ोस तक जो पहचान बनी है और घर की वस्तुओं को पहचानने की जो समझ विकसित हुई है, वह किसके बल पर हुई? मातृत्व का महत्त्व समझकर मैंने अपना कर्तव्य निभाया, लेकिन बच्चा तो पानी में अण्डाकार रूप से विकसित होते-होते धीरे-धीरे मनुष्य का आकार ग्रहण करता है। आज के साढ़े चार वर्ष के रघुनाथ के साथ भी तो यही हुआ है। क्या वह अपने-आप यहाँ तक पहुँच गया है, या उसके यहाँ तक पहुँचने के अनुकूल परिस्थितियाँ हमने बनाई हैं?

पति के पास पहुँचकर सावित्री बोलीं-

"क्यों बुलाया?"

गियानचन की छाती की कसक बढ़ते-बढ़ते इतनी बढ़ गई कि वे बेसुध हो गए। क्या हुआ, कैसी पीड़ा हो रही है, कुछ कह नहीं सके। सावित्री दोबारा पूछतीं, उससे पहले ही स्थिति समझने का प्रयत्न करने लगीं। तभी गियानचन ने हाथ से अपनी छाती की ओर संकेत करके दर्द बताया।

जब कोई अपने हृदय की पीड़ा प्रकट करता है, तब देखने-सुनने वाले की छाती भी भीतर से मानो फटने लगती है और वही मन उस फटी छाती को जोड़ने-सँभालने का प्रयत्न भी करता है।

लेकिन गियानचन ऐसे व्यक्ति नहीं थे कि बड़े-से-बड़े दर्द को साधे हुए ऋषि-मुनि की तरह अपनी छाती में दबाकर चुपचाप बैठे रहें। और ऐसे भी नहीं थे कि कोई छोटा-सा काँटा चुभते ही, विशेषकर पत्नी के सामने, इस तरह आह-कराह करने लगें मानो साही का काँटा पैर के आर-पार हो गया हो।

संयोग से दर्द ने कुछ करवट ली और उन्हें थोड़ी राहत मिली। आँखें खोलीं तो पत्नी को सामने खड़ा पाया। पलकें झपकाते हुए गियानचन बोले-

"मैं नहीं जीऊँगा। मन में जो अभिलाषा थी, अब पूरी नहीं कर पाऊँगा। रघुनाथ का भार आपके ऊपर रहा।"

पति की बात सुनकर सावित्री का मन ठकमुरा-सा, अर्थात सुन्न हो गया। ठकमुरा इस तरह कि जिसे कोई ठगता है, वह समझता है कि अमुक ने मुझे ठग लिया, इसलिए वह ठग है; और ठग स्वयं अपनी चालाकी को सफल मानता है। धीरे-धीरे चालाकी उसका व्यवसाय बन जाती है और वह स्वयं को चतुर समझने लगता है। माता-पिता भी अपनी सन्तान के लिए यही कामना रखते हैं कि बच्चा जितना बुद्धिमान हो, उतना अच्छा।

पति के मुँह से निकली बात सुनकर सावित्री का मन जैसे भीतर ही भीतर धँसने लगा। एक ओर परिवार का कर्ता-पुरुष संसार से विदा होने की बात कर रहा था, जिससे परिवार का ऐसा भार उनके सिर पर आने वाला था, जिसकी उन्होंने आज तक कल्पना भी नहीं की थी। दूसरी ओर आज ही दोनों पति-पत्नी ने रघुनाथ के सम्बन्ध में संकल्प लिया था कि कल बेटे को विद्यालय का मुँह दिखाएँगे।

घर में आग लगने पर जिस तरह घर-द्वार के साथ भीतर रखी वस्तुएँ भी जल जाती हैं और आग लगने से पहले का भरा-पूरा मन अचानक ऐसी मरुभूमि में पहुँच जाता है, जहाँ सब कुछ रहते हुए भी कुछ नहीं रह जाता, सावित्री की स्थिति भी वैसी ही हो गई। फिर भी उन्होंने अपने जलते हुए मन को किसी तरह सँभाला।

सँभलते ही विचार आया कि बच्चे को विद्यालय में प्रवेश दिलाने का संकल्प तो कल पूरा होना है, लेकिन इस बीच पति की ऐसी अवस्था हो गई है। जीवन की राह में सामने कितना ही बड़ा पहाड़ क्यों न खड़ा हो जाए, यदि उसे पार किए बिना जीवन की गाड़ी आगे नहीं चल सकती, तो पहले उसे पार करने का उपाय ही करना होगा।

अपने संकल्प को मन में दृढ़ रखते हुए सावित्री ने सोचा कि पति की वर्तमान स्थिति ऐसी है, जो किसी दूसरे की सहायता के बिना सँभलने वाली नहीं। इसलिए पहले पड़ोसी के यहाँ जाकर कहना चाहिए कि हम भारी विपत्ति में पड़ गए हैं, सहायता करने चलिए। लोग दया-धर्म को कितना भी मिटाने का प्रयत्न करें, वह मिटने वाली चीज नहीं है। जब तक मनुष्य रहेगा, दया-धर्म भी रहेगा।

उसका जन्म आज नहीं हुआ है कि आज ही समाप्त हो जाएगा।

मनुष्य के जन्म को सत्तर लाख वर्ष बीत चुके हैं। उसके बाद भी पचास लाख वर्षों तक उसका जीवन लगभग उसी तरह रहा, जैसे चार पैरों पर जानवर चलता है। अर्थात मनुष्य भी पैरों के साथ हाथों के सहारे चलता रहा। भले ही बीस लाख वर्ष पूर्व उसने दोनों हाथ ऊपर उठाकर पैरों के बल चलना शुरू किया हो।

पड़ोसी से सहायता मिलने की आशा में सावित्री ने अपने मन को मजबूत डोरी से बाँधा। उन्होंने सोचा, यदि कोई व्यक्ति हवाई जहाज की दुर्घटना में गिरकर अन्तिम साँसों के लिए छटपटा रहा हो, तो उसके प्राण बचाने का प्रयत्न ही किया जा सकता है; उसके साथ कोई दूसरा भी मर जाए, उससे क्या होगा?

इसी विचार के साथ वे पड़ोसी के घर पहुँचीं और पड़ोसिन को पुकारा-

"दीदी, दीदी।"

'दीदी-दीदी' की आवाज सबसे पहले रतनलाल के कानों में पड़ी और उनकी नींद टूट गई। फिर भी वे चुप रहे। उनका विचार था कि रात-बिरात किसी स्त्री की आवाज आए तो पहले स्त्री को ही उत्तर देना उचित है। यदि पुरुष पहले उत्तर दे तो समाज में तरह-तरह के लांछन लगने की सम्भावना रहती है। हाँ, जान-पहचान की बात अलग है। परिचित की आवाज कान में पड़े तो सम्बन्ध का ध्यान रखते हुए व्यवहार करना ही उचित है।

रतनलाल सीधे-सादे समझदार व्यक्ति थे। सावित्री की आवाज पहचानते ही उन्होंने पत्नी को जगाते हुए जोर से कहा-

"अरे अल्लापुरवाली, अरे अल्लापुरवाली।"

रतनलाल की आवाज पहले ही भारी थी और उस समय उन्होंने और जोर लगाकर पुकारा था। सितली की नींद टूट गई। चौंककर बोलीं-

"क्या है... क्या है?"

उसी बीच बाहर से फिर सावित्री की आवाज आई-

"दीदी, दीदी।"

सितली ने उत्तर दिया-

"क्या कह रही हो, ब्रह्मपुरवाली कनियाँ?"

तीन दिन पहले ही दोनों में, अर्थात ब्रह्मपुरवाली और अल्लापुरवाली में, इतनी कहा-सुनी और झगड़ा हुआ था कि दोनों एक-दूसरे के दरवाजे की ओर घूमकर थूक चुकी थीं और कह चुकी थीं कि न तुम्हारे दरवाजे की ओर देखेंगे, न तुम्हें टोकेंगे। दोनों एक-दूसरे से यह भी कह चुकी थीं कि न मुझे तुम्हारी आवश्यकता पड़ेगी, न तुम्हें मेरी। लेकिन मिथिला की पुरानी सामाजिक भावना कितनी ही क्षीण क्यों न हो गई हो, गाँवों में आज भी यह परम्परा उसी तरह जीवित है कि कोई दरवाजे पर आ जाए तो उसके साथ आगन्तुक का व्यवहार करना धर्म माना जाता है। यह अलग बात है कि कभी-कभी लोग जत्था बनाकर बदला चुकाने भी दरवाजे पर पहुँच जाते हैं। यह भी गाँव-समाज की एक विशेषता है। लेकिन अभी वह बात नहीं। अभी प्रश्न यह है कि अल्लापुरवाली और ब्रह्मपुरवाली के बीच झगड़ा हुआ ही क्यों था?

मधुबनी जिले के मध्य भाग में बसा ब्रह्मपुर अच्छे गाँवों में गिना जाता है। इस गाँव की स्त्रियाँ बोलचाल की मिठास में आगे नहीं हैं, लेकिन कपड़े-लत्ते पहनने-ओढ़ने से लेकर खाने-पीने की व्यवस्था सँवारने में आगे अवश्य हैं। हाँ, उनमें एक कमी यह है कि खेत-पथार से उनका विशेष लेना-देना नहीं रहता। दूसरी ओर सितली की बोली कौए की बोली जैसी कर्कश है। खाने-पीने और पहनने-ओढ़ने में भी वे ब्रह्मपुरवाली की अपेक्षा पीछे अवश्य हैं, लेकिन खेत-पथार के काम और मवेशियों की देखभाल में अल्लापुरवाली पुरुषों के भी कान काटती हैं।

सावित्री बोलीं- "रघुनाथ के बाबू को छाती में दर्द उठ गया है, इसलिए...।"

'दर्द' सुनते ही रतनलाल बोले- "कनियाँ, आप आगे चलिए, मैं पीछे-पीछे आ रहा हूँ। तब तक किसी बरतन में सरसों का तेल निकालकर रखिए। तेल को मन्त्रित भी कर दूँगा और मालिश करना भी आता है। कोई चिन्ता मत कीजिए, सब ठीक हो जाएगा। आप किसी का बुरा करती हैं जो भगवान आपका बुरा करेंगे?"

रतनलाल की सान्त्वना-भरी बात सुनकर सावित्री के मन में शान्ति की एक लहर उठी। वे बोलीं- “दीदी, पिछली सारी बातें भूल जाइए। जहाँ चार बरतन होते हैं, वहाँ खनकते ही हैं।”

यहाँ पिछली सारी बातें भूलने का अर्थ दोनों के बीच हुए झगड़े और कहा-सुनी को भूलना था। सावित्री की बात सितली ने मन ही मन मान ली। उन्होंने भी समझा कि व्यर्थ की कहा-सुनी के कारण आवश्यकता के समय एक-दूसरे से दूरी बना लेना उचित नहीं। उससे अपना ही नुकसान होता है। इससे अच्छा है कि शान्ति से पड़ोसी बनकर, एक-दूसरे का साथ निभाते हुए जीवन बिताया जाए।

सितली बोलीं-

“जिस दिन का जो दोष था, वह बीत गया। क्या विपत्ति के समय भी लोग एक-दूसरे को छोड़ देंगे?”

समाज में यह भावना आज भी जीवित है कि आग लगने या कोई दूसरी आफत-विपत्ति आने पर बारहों वर्ण के लोग एक-दूसरे की सहायता करते हैं, आग बुझाते हैं और संकट में साथ खड़े होते हैं। उस समय कहाँ रह जाता है छुआछूत, भेदभाव या ऊँच-नीच का विचार। लेकिन इसका अर्थ यह भी नहीं कि समाज से छुआछूत मिट गई है। वह भी जीवित है और लोग तरह-तरह के भेदभाव को बढ़ावा भी देते रहते हैं।

गियानचन के पास पहुँचकर रतनलाल ने किसी कुशल चिकित्सक की तरह सावित्री से कहा- “हमारी जितनी बुद्धि-समझ है, वह हम लगाते हैं, लेकिन आप भी बैठी मत रहिए। राधाबाबू के पास भी किसी को भेजिए। राधाबाबू अनुभवी डॉक्टर हैं। बीमारी का क्या ठिकाना कि किस रूप में कौन-सी बीमारी शरीर में प्रवेश कर जाए।”

सावित्री जीवन के ऐसे संकटों की अनुभवी नहीं थीं। साधारण विपत्ति आने पर भी उनका मन विचलित हो जाता था, लेकिन रतनलाल की बात सुनकर मन उतना विचलित नहीं रहा, जितना पहले था। पीछे-पीछे सितली भी आ गईं। इसी बीच रतनलाल गियानचन की छाती पर तेल की मालिश उसी तरह करने लगे, जैसे कोई अनुभवी व्यक्ति करता है। इससे गियानचन का दर्द कुछ कम

हुआ। दर्द कम होते ही उन्होंने आँखें खोलीं और कहा- “रतन भाय!”

रतनलाल बोले- “हाँ, क्या हुआ है गियान?”

गियानचन को बोलते सुनकर सावित्री के मन में इतनी आशा जागी कि अब पति का दर्द अवश्य दूर हो जाएगा।

सितली बोलीं- “कनियाँ, केवल इतने से सोलहों आना भरोसा मत करिए। दुनिया में एक से बढ़कर एक जानकार लोग हैं। अभी रात भी बहुत है। किसी तरह भोर होने दीजिए, फिर उपचार के और उपाय किए जाएँगे।”

गियानचन बोले- “भैया, क्या कहूँ कि क्या हुआ, कैसे हुआ। सोया हुआ था। इसी बीच क्या हुआ, कुछ समझ ही नहीं पाया।”

होता भी ऐसा ही है। कठिन से कठिन रोग शरीर में कैसे प्रवेश कर जाता है, यह मनुष्य कहाँ समझ पाता है। हाँ, इतना अवश्य है कि साँप काट रहा हो, आग में शरीर जल रहा हो या गाड़ी-सवारी की दुर्घटना हुई हो, तो उसे आँखों से देखा जा सकता है और अपनी समझ के अनुसार बचने का प्रयास भी किया जा सकता है। लेकिन बड़े से बड़ा रोग शरीर में कैसे प्रवेश कर जाता है, यह सब कहाँ समझ में आता है, विशेषकर नींद से भरी रात में।

समाज और परिवार की स्थिति भी कुछ ऐसी ही है। समाज की कौन-सी समस्या है, इसे समाज के सभी लोग कहाँ समझ पाते हैं; उसी तरह परिवार की प्रत्येक समस्या को परिवार का हर व्यक्ति नहीं समझ पाता। शरीर के रोग को शरीर-रोग परखने वाला जाँचकर पकड़ सकता है, लेकिन मन के रोग को पकड़ना आसान नहीं होता।

बातचीत करते हुए रतनलाल धीरे-धीरे गियानचन की छाती पर हाथ फेरते और मालिश करते रहे। इसी बीच कठिन, भारी रात भी अपनी गति से आगे बढ़ती हुई अपनी सीमा पार कर गई। भोर होते ही कौओं की काँव-काँव सुनकर सबके मन में एक साथ आया कि सुबह हो गई। भोर हुई तो दिन का आगमन भी निकट आ गया और उसके साथ दुनिया को देखने का रास्ता भी खुलने लगा।

सितली बोलीं-

"कनियाँ, दुःख की रात कट गई। अब दिन हो गया है। जैसे एक से बढ़कर एक असाध्य रोग हैं, वैसे ही उन्हें साधने वाले एक से बढ़कर एक साधक भी हैं। इसलिए मन में गाँठ बाँध लीजिए कि अब आपके पति का रोग अवश्य दूर होगा।"

सितली की बात सुनकर सावित्री का मन पाताल के पानी की तरह स्थिर हो गया। वे बोलीं-

"दीदी, मैं भले नई-नौतारि हूँ, लेकिन ये ऐसे नहीं हैं। पोता-पोती तक का पालन कर सकते हैं। इनके लिए जो करना पड़े, करूँगी; आवश्यकता हुई तो इनके पीछे अपनी देह तक बेच दूँगी।"

सावित्री को अपने परिवार की धारा में इस तरह तैरते देखकर सितली का मन मोम की तरह पिघल गया। उनके मन में सावित्री के प्रति नए-नए विचार उठने लगे।

सितली बोलीं-

"कनियाँ, जो भी हो, हम लोग पिछड़े हुए देश-समाज के लोग हैं। बहुत कुछ पिछड़ा हुआ है। अपनी सीमा को देखते हुए अपने जीवन को सँभालने की जितनी शक्ति है, उसमें चूकना नहीं चाहिए। दुनिया में एक से बढ़कर एक ठग हैं, जो मनुष्य की कौन कहे, भगवान को भी ठगने का प्रयास करते हैं। भगवान आँख-कान मूँदकर ठगे नहीं जाते, लेकिन हम लोग तो मनुष्य हैं, मनुष्य की ही सन्तान हैं, पाँच तत्त्वों से निर्मित इस धरती के श्रेष्ठ जीव। जानवर की सन्तान की तरह केवल जानवर बनकर थोड़े ही रहना है।"

सितली ने अपने विचार से क्या कहा और सावित्री ने अपने मन में उसका क्या अर्थ ग्रहण किया, यह वे दोनों ही जानती थीं। इसी बीच गियानचन बोले-

"अब मैं नहीं जीऊँगा।" ❑

चौथा पड़ाव

गियानचन की बीमारी को आज छह महीने पाँच दिन हो गए। आज उनकी स्थिति अब तक के सभी दिनों से अधिक खराब है। अचेत मन में वे क्या सोच रहे हैं, यह कौन जान सकता है; लेकिन सावित्री, आस-पड़ोस के लोग और गाँव-समाज इतना अवश्य सोच रहे हैं कि केवल गियानचन का ही परिवार ऐसी दशा में उजड़ रहा हो, ऐसी बात नहीं है। आसपास के गाँवों की कौन कहे, अपने गाँव-समाज में भी ऐसे अनेक परिवार हैं, जिनकी स्थिति इसी तरह बिगड़ती रही है।

गियानचन के मन की अभिलाषा थी कि बेटे रघुनाथ को उसकी इच्छा के अनुसार पढ़ाएँगे, लेकिन वह अभिलाषा मन में ही समाई रह गई। छह महीने पहले पति-पत्नी दोनों ने रघुनाथ के सम्बन्ध में निश्चय किया था कि अगले दिन उसे विद्याध्ययन के लिए विद्यालय में प्रवेश दिलाएँगे, लेकिन वह विचार गियानचन के मन में ही सड़-गलकर रह गया। उन्हें कहाँ याद रहता कि रघुनाथ की उम्र को लेकर दोनों के बीच कहा-सुनी भी हुई थी और यह बात उठी थी कि छह महीने बाद रघुनाथ विद्यालय जाने योग्य हो जाएगा। अब तो वे छह महीने भी बीत चुके हैं और रघुनाथ पाँच वर्ष की सीमा भी पार कर चुका है। लेकिन उसे देखे कौन? देखने वाला है ही कौन?

रघुनाथ के बालमन ने छह महीने पहले पिता के मुँह से सुना था कि कल उसका नाम स्कूल में लिखाया जाएगा, लेकिन पिता की बीमारी के बीच वह बात इस तरह खो गई कि कब और कहाँ विस्मृत हो गई, उसे भी पता नहीं चला।

इन छह महीनों में सावित्री की आर्थिक स्थिति जिस तरह चरमरा गई थी, उसी तरह उनका शरीर भी जर्जर हो चुका था। मानसिक पीड़ा से दबती सावित्री अपने जीवन की आशा खोती जा रही थीं, लेकिन अपनी कोख के बच्चे रघुनाथ को सामने देखते ही अपने जीवन की पीड़ा दबाकर उसके भविष्य की चिन्ता में

मन लगाए रखती थीं।

गियानचन पूरब वाले कमरे में शान्त पड़े थे। ओसारे के तीसरे खम्भे से टिककर बैठी सावित्री मन ही मन अपना भविष्य देख रही थीं। उन्हें अब पति के बचने की कोई आशा दिखाई नहीं देती थी। वे सोच रही थीं, जब ससुराल आई थी तब परिवार में चार लोग थे। पहली सन्तान हुई तो पाँच हो गए। फिर सास-ससुर की मृत्यु के बाद तीन रह गए। अब जब फिर चार हुए थे तो पुनः तीन रह जाएँगे। यह सोचते ही मन में हूक उठी। मेरी उम्र ही कितनी है? अगले वर्ष चौबीस वर्ष पूरे होंगे।

अचानक सावित्री का मन अपने नारी-जीवन के संसार में पहुँच गया। वहाँ उन्होंने देखा कि समाज में उनके जैसी कितनी ही स्त्रियाँ हैं, जिनके परिवार पुरुष-विहीन हो चुके हैं। विचार तुरन्त पुरुष-विहीन परिवारों के बनने और उजड़ने की ओर बढ़ गया। उन्हें लगा कि समाज ने ऐसी स्त्री का जीवन वेश्यालय से भी बदतर बना दिया है। ऐसे कठोर समाज में जीवन बिताना कोई किस्सा-कहानी नहीं है। लेकिन उस जीवन को जीने योग्य कैसे बनाया जाए, इसका उपाय भी समाज के लोगों को ही करना चाहिए। जहाँ समाज में ऐसी परिस्थितियों का सामना करने की शक्ति नहीं है, वहाँ अपने जीवन की रक्षा का भार स्वयं अपने ऊपर लेना ही पड़ेगा।

सावित्री का मन थककर ठिठक गया। उसी थके हुए मन को उनके भीतर के विचार ने धक्का देकर कहा- रघुनाथ पाँच वर्ष का हो गया है। दिन-प्रतिदिन आगे ही बढ़ेगा। अब तो वह साथ रहने वाला साथी भी बन गया है। समाज कितना ही पतित क्यों न हो गया हो, इसका अर्थ यह नहीं कि मिथिला की मानवीय चेतना सोलहों आना मिट गई है। आज भी समाज में ऐसे लोग जीवित हैं, जो अपने मानवीय धर्म का मूल्य पाई-पाई चुकाते हैं।

अचानक सावित्री का ध्यान पति की ओर गया। शरीर शान्त पड़ा था, लेकिन गियानचन अन्तिम साँसें गिन रहे थे। सावित्री ने उनके मुँह से कपड़ा हटाकर चेहरा देखा। पति का बिगड़ा हुआ चेहरा देखते ही उनके मन-सरोवर में ज्वार उठ गया। घर-आवास से दूर कहीं अचानक आँधी-तूफान में फँस जाने पर

जिस तरह प्राण बचाना कठिन हो जाता है, उनकी स्थिति भी वैसी ही हो गई।

पिछले छह महीनों की पूरी जीवनगाथा आँखों के सामने घूम गई। इन छह महीनों में न कभी भर नींद सो सकी, न भरपेट भोजन कर सकी। अपनी बुद्धि और समझ की सीमा में जो कुछ सम्भव था, सब किया, फिर भी यह दशा क्यों हो रही है? एक बीघे की बगिया के सारे पेड़ बेचकर पति की सेवा में लगा दिए। माता-पिता से मिले शरीर के गहने-जेवर भी बेच दिए। जितनी जोत-जमीन थी, उसमें आधे से अधिक गिरवी पड़ चुकी है और जो बची है, वह भी बँटाई पर लगी हुई है।

आर्थिक दृष्टि से अपने परिवार की स्थिति को देखते हुए सावित्री को लगा कि भले ही परिवार जर्जर हो गया है, फिर भी उठकर खड़ा होने की शक्ति पूरी तरह समाप्त नहीं हुई है। वह शक्ति अभी बाकी है। इस विचार से उनका मन अचानक चौंक उठा।

निराश मन में अपना जीवन फिर जागा। जिस समाज का यह परिवार एक अंग है, परिवार टूटने लगे तो जो जीवित हैं, वे उसी समाज के बल पर फिर उठकर खड़े होंगे। सावित्री के मन में सावन पंचमी के चाँद की तरह एकाएक स्वच्छ, निर्मल प्रकाश फैल गया। लेकिन अगले ही क्षण जैसे आँधी में काला बादल आकर चाँद को अपराधी की तरह दबोच ले और अँधेरा फैला दे, वैसे ही उनके मन में फिर अँधेरा फैल गया।

अँधेरा फैलते ही मन काँप उठा। जिस समाज में पति-विहीन स्त्री को अशुभ माना जाता है और रास्ते-घाट का भदवा, अर्थात अपशकुन समझा जाता है, उसी समाज में कल से उन्हें भी अपना जीवन बिताना होगा। संयोग से कहीं जाते समय किसी की दृष्टि उन पर पड़ जाए और उसके साथ कोई अपशकुन हो जाए, तो उसका सोलहों आना दोष उन्हीं पर मढ़ दिया जाएगा और गाली-अपमान भी उन्हें ही सहना पड़ेगा।

टूटे हुए मन में फिर आशा की पतली-सी किरण दिखाई दी। उसी प्रकाश से मन कुछ आश्वस्त हुआ। अनायास प्रश्न उठा- जो समाज किसी का भला नहीं कर सकता, क्या उसे किसी का बुरा करने का अधिकार है? यह उम्र की

अपरिपक्वता थी या पीड़ा से व्याकुल मन की प्रतिक्रिया, कहना कठिन था। जीवन की अनाड़ी सावित्री कहाँ जानती थीं कि यहाँ के मनुष्य-इतिहास में आम जन को स्वतन्त्र जीवन का सुख कितनी कठिनाई से मिला है। फिर भी यह कहना ठीक नहीं कि उन्हें जीवन से कुछ मिला ही नहीं। बहुत कुछ मिला भी है और बहुत कुछ पाने का प्रयास भी चल रहा है।

अपनी अवस्था, अपनी उम्र पर दृष्टि डालते ही सावित्री ने देखा कि उनके जैसी पुरुष-विहीन परिवारों की स्त्रियों के साथ समाज में कौन-सा अत्याचार बाकी रहा है। नीच से नीच व्यवहार होते आए हैं और आज भी हो रहे हैं। समाज और परिवार की स्थिति अमरलत्ती जैसी है, जो किसी दूसरे पेड़ पर चढ़ते-चढ़ते उसकी चोटी पकड़ लेती है और ऊपर छाते की तरह फैल जाती है, लेकिन अपनी जड़ और सिर का पता नहीं देती। परिवार और समाज जब जीवन को आधार बनाकर साथ-साथ आगे कदम बढ़ाएँगे, तभी जीवन के मूल तत्त्व को पकड़कर चलना सीखेंगे। लेकिन ऐसा हो कहाँ रहा है?

हो यह रहा है कि शिक्षा बाद में ग्रहण की जाती है और दीक्षा पहले ले ली जाती है। शिक्षा का अर्थ है सीखना और दीक्षा का अर्थ है देना। जब स्वयं सीखा ही नहीं, तो दूसरे को दिया क्या जाएगा?

अपने परिवार की पूरी स्थिति पर दृष्टि डालते ही सावित्री के मन में जुगनू की तरह अचानक प्रकाश हुआ। मन ने कहा- जिसके पास अपनी पैतृक सम्पत्ति नहीं है, जो समाज के सबसे पिछड़े परिवारों की दशा में है, अपनी स्थिति वैसी तो नहीं है। अपने पास पाँच बीघा जमीन है। मुझे खेती करना नहीं आता, लेकिन दुनिया भी तो देख-देखकर ही सीखती है। सीख लूँगी। अपने बल पर जितना सम्भव होगा, उतना स्वयं उपजाऊँगी और जो नहीं हो सकेगा, उसका दूसरा-तीसरा उपाय करूँगी। जब समाज में मैं किसी का रास्ता नहीं रोकूँगी, तो मेरा रास्ता कोई क्यों रोकेगा? जानने के लिए ही जीवन है और जीवन के लिए ही जानना भी।

अचानक सावित्री का मन पिछले छह महीनों में किए गए प्रयासों पर गया। अपनी जानकारी में जिन डॉक्टर-वैद्यों, भगत-धामियों और ओझा-गुनियों के नाम

सुने, किसी के यहाँ जाने से मुँह नहीं मोड़ा। एक से बढ़कर एक जीवनदान देने वाले माने जाने वाले लोगों के दरवाजे पर पहुँचीं। आरम्भ में स्वयं कुछ नहीं समझती थीं, लेकिन छह महीने के अनुभव से बहुत कुछ समझने लगी थीं। यह भी कोई नहीं कह सकता कि उन्होंने समाज के लोगों की बात नहीं मानी। उन्हीं की सलाह पर गाँव के डॉक्टर से लेकर पटना के डॉक्टर तक पहुँचीं। उन्हीं के कहने पर डॉक्टर-वैद्य, भगत-धामी और ओझा-गुनी सबके यहाँ गईं। जो उनसे भी न हो सका, उसमें सावित्री का क्या दोष था?

अचानक उनके मन में दृढ़ता जाग उठी। मन ने कहा- मनुष्य कोई हाथी तो नहीं है कि प्रतिदिन एक पूरा पेड़ खाएगा। मनुष्य तो मनुष्य है, बित्ते भर पेट वाला। यदि शरीर को श्रम में लगाए रखें तो हँसते हुए जीवन क्यों नहीं चल सकता?

इसी बीच उस कमरे से, जिसमें गियानचन पड़े थे, कराहने की आवाज आई। वह गियानचन की अन्तिम साँसों की कराह थी। जैसे तेल समाप्त होने पर डिबिया या लालटेन की लौ अचानक तेज प्रकाश देने लगती है, वैसे ही गियानचन की आवाज उठी। आवाज सुनते ही सावित्री दौड़कर उनके पास पहुँचीं। देखा, पति पहले की तरह शान्त पड़े हैं।

सावित्री के मन में आया कि शान्ति की भी दो धाराएँ हैं। एक अचेत मन की शान्ति, जिसे मतिशून्यता कहा जा सकता है, और दूसरी सचेत मन की शान्ति, जिसके पीछे सभी व्याकुल रहते हैं। सबके मन में यही इच्छा रहती है कि जीवन शान्ति से चले, परिवार शान्ति से चले, देश-दुनिया शान्ति से चले। लेकिन सबके मन में यह इच्छा रहते हुए भी शान्ति से चल कहाँ पाते हैं? अधिकतर लोग, परिवार और समाज अशान्ति से क्यों गुजरते हैं?

एक ही मिट्टी और एक ही पानी वाले खेत में अनेक प्रकार के फल-फूल लगाए जाते हैं। मिट्टी एक ही होती है, पानी की सुविधा भी एक ही तरह की होती है और पौधे भी प्रायः एक जैसे दिखाई देते हैं, फिर भी फल और फूल अपने-अपने गुण-धर्म के अनुसार अलग-अलग आकार और सुगन्ध धारण करते हैं। उसी तरह मनुष्य का बाहरी आकार समान होते हुए भी कोई धन को सर्वोपरि

मानकर फलता-फूलता है और कोई विचार को सर्वोपरि मानकर फलता-फूलता है। विचार में जब शान्ति के बीज का अंकुर निकलेगा, तभी सप्तमी-दुर्गा का वह अंकुर कुम्हार के हाथ तक पहुँचेगा।

पति की कराह सुनकर सावित्री ने उनकी नाक के पास उँगली रखकर साँस की गति देखी। गियानचन की साँस धीरे-धीरे क्षीण होती जा रही थी। इतनी क्षीण साँस देखकर भी सावित्री के मन में आशा अभी जीवित थी कि यदि कोई पति के प्राण बचा सके, तो उसकी शरण में जाने के लिए वे अपनी देह तक बेचने को तैयार हैं।

सावित्री का मन अचानक पिछले छह महीनों में पति की सेवा के लिए किए गए प्रयासों की ओर दौड़ गया। विचार उठा कि समाज में जो लोग रोग-शोक से बचाने वाले माने जाते हैं, वही तो किसी को बचा सकते हैं। उन्हीं के पीछे अपना सब कुछ बहा दिया। फिर भी मन अभी यही कह रहा था कि यदि कोई पति के प्राण बचा सके, तो जो कुछ बचा है, वह भी झोंक दूँगी।

पति के सामने खड़ी होकर सावित्री पुकारने लगीं-

“रघुनाथ के बाबू, रघुनाथ के बाबू!”

अभी भी उन्हें आशा थी कि पति यदि मरेंगे भी, तो अन्तिम समय में एक बार बोलेंगे अवश्य। कोई उत्तर नहीं मिला तो सावित्री लौटकर ओसारे के खम्भे से टिककर बैठ गईं और टकटकी लगाए अपने दिन-दुनिया की ओर देखने लगीं। अचानक पति की सेवा और उपचार के लिए किए गए सारे प्रयत्न आँखों के सामने आ गए। एक से बढ़कर एक डॉक्टर की शरण में गईं, लेकिन कोई रक्षक नहीं बन सका।

अनुभवहीन सावित्री के मन में यह बात क्यों न उठती कि आज चिकित्सा-विज्ञान बहुत आगे बढ़ चुका है और दिन-प्रतिदिन आगे भी बढ़ रहा है, जो जीवन के लिए शुभ है। लेकिन बीस-पच्चीस वर्ष पहले आज जैसी स्थिति कहाँ थी। विज्ञान अविकसित था, तो चिकित्सा-विज्ञान भी अविकसित था और उसके उपचार की सीमा भी वैसी ही थी। फिर भी बीमारी तो बीमारी है। वह किसी आड़-सीमा में बँधी नहीं होती। कौन-सी बीमारी किसके शरीर में प्रवेश कर जाए,

इसका कोई ठिकाना नहीं।

डॉक्टरों से आगे बढ़कर सावित्री का मन ओझा-गुनी और भगत-धामियों की ओर गया। भगत-धामियों का ध्यान आते ही बरिअरबा गाँव का धामी याद आया। कहा भी जाता है- “जिसके पास ऊक नहीं, उसकी फूँक भारी।” वह किस निर्लज्ज आत्मविश्वास से रोग का भार अपने ऊपर लेकर कहता था कि यदि फुसन धामी की ‘वाक्’, अर्थात दैवी शक्ति की बात, झूठी निकले तो मेरे नाम पर तीन धोनहा थूक फेंकना और पच्चीस जूते मारना। अब वह कहाँ गया, कहाँ गायब हो गया, कुछ पता नहीं। उसी के करतब में अपने दो आम के पेड़ तक गँवा दिए। आज यदि वे पेड़ बचे रहते तो दो महीने का गुजारा हो जाता।

टूटे हुए मन को धीरे-धीरे बाँधकर सावित्री ने अपने को सन्तोष दिया। सन्तोष आते ही अपने और दोनों बच्चों के जीवन का विचार जाग उठा। सभी जानते हैं कि शरीर रोग-व्याधियों का घर है। कब कौन-सा रोग शरीर में आ बसे, इसका कोई ठिकाना नहीं। लेकिन इतना तो स्वयं तय करना ही होगा कि जीवन की इस मझधार को किस तरह पार किया जाए।

अनमनी सावित्री के मन में विचार आया कि जैसे कोई विद्यार्थी वर्ष भर की परीक्षा देने के बाद सफलता की आशा मन में सँजोकर आगे की तैयारी के लिए दूसरे विद्यार्थियों से राय-विचार करता है, उसी तरह जो विद्यार्थी अपनी असफलता देखता है, वह या तो दोबारा पढ़ने का संकल्प करता है अथवा पढ़ाई छोड़कर जीवन की दूसरी धारा की ओर बढ़ता है। क्या अपनी स्थिति भी अब वैसी ही नहीं हो गई है? क्या पति के साथ स्वयं भी मर जाऊँ? यदि मैं भी मर गई तो अपनी कोख से जन्मे दोनों बच्चों का क्या होगा?

विचलित मन में कोई समुचित विचार स्थिर नहीं हो रहा था। मन ने पूछा- क्या इस धरती पर केवल मैं ही हूँ, या मेरे जैसे अरबों-खरबों लोग हैं? सबके पास अपने-अपने जीवन का अनुभव तो है ही।

धीरे-धीरे सावित्री के मन में धैर्य जागा। विचार आया कि जब ऐसी विपत्ति के घोर अँधेरे में पड़ ही गई हूँ, तब क्यों न इसी समय अपने आगे के जीवन की व्यवस्था करने में लगूँ। यह आज की बात नहीं है; सदा से होता आया है कि जो

बात स्वयं समझ में न आए, उसे दूसरे से पूछ लिया जाए। यह अलग बात है कि सामने वाला अच्छा रास्ता दिखाएगा या बुरा। मनुष्य की बुद्धि में यह दोष भी है कि किसी विचार या काम को स्वयं ठीक से न समझते हुए जब दूसरे से पूछा जाता है, तो सलाह देने वाला कभी अपनी प्रतिष्ठा बचाने के लिए भी कोई विचार दे देता है। ऐसा भी होता है कि बिना समझे लोग सलाह दे देते हैं।

सावित्री का मन बदलने लगा। परिवर्तन यह था कि इतना तो उनका अपना सुरक्षित धन है कि मन जिस तरह माने, उसी तरह दूसरे मनुष्यों की तरह अपना जीवन बना सकती हैं। अभी वे जीवित हैं। जीवन-साथी साथ छोड़ रहा है, तो क्या संसार में साथ देने वालों की कमी है कि उन्हें कोई साथ न मिलेगा? यहाँ इसका गलत अर्थ नहीं लेना चाहिए, अर्थात पति के रूप में नहीं। साथ और सृजन का क्या केवल एक ही रास्ता है? उसके अनेक रास्ते हैं।

जैसे सावित्री को अपने जीवन की राह की कोई हल्की-सी छाया दिखाई दे गई हो, उनका मन कुछ प्रसन्न हुआ। ओसारे से उठकर आकाश की ओर देखा तो लगा कि भोर हो रही है। उसी समय पूरब की ओर आम के पेड़ पर पौरुकी की आवाज सुनाई दी। आवाज सुनते ही सावित्री ने विचारचन के यहाँ जाने का निश्चय किया।

गियानचन और विचारचन पड़ोसी भी थे और लगभग एक ही उम्र के भी। बचपन से दोनों का सम्बन्ध रहा था। लेकिन अपने-अपने परिवार का दायित्व सँभालने में दोनों इतने व्यस्त हो गए कि एक-दूसरे से पेट की बात, अर्थात मन की बात करने का समय ही नहीं मिलता था। बचपन में साथ रहते हुए जिस तरह दोनों अपने मन की बात खुलकर कहते थे, बाद में वैसा नहीं हो पाता था। अधिक से अधिक इतना होता कि रास्ते में कहीं मिल गए तो पूछ लिया-

“भाय, ठीक हैं न?”

उत्तर मिलता-

“हाँ। आप भी ठीक हैं न?”

“हाँ।”

इस ‘हाँ’ के पीछे बहुत बड़े विचार छिपे होते हैं, लेकिन न गियानचन का

मन वहाँ तक पहुँच पाता था, न विचारचन का। सामान्य व्यवहार में इतना ही पर्याप्त मान लिया जाता था कि भाय बहुत बढ़िया हैं, तो सब बहुत बढ़िया है।

गियानचन और विचारचन के बीच सम्बन्ध कितना गहरा था, सावित्री पूरी तरह नहीं जानती थीं। लेकिन अपनी आँखों से इतना देखा और कानों से इतना सुना था कि दोनों एक-दूसरे को 'भाय' कहते रहे हैं। जब दोनों ने भाईचारे का सम्बन्ध बनाए रखा है, तो अपना सम्बन्ध भी भाव-भौजाई का हुआ। और अब पति के ही निमित्त, पति के ही सम्बन्ध के सहारे, विचारचन के यहाँ जाना होगा।

सावित्री विचारचन के यहाँ जाने के लिए निकल पड़ीं। आँगन से बाहर निकलते ही मन विचारचन की ओर गया और भीतर हल्की-सी मुस्कान उठी। सोचा, जब दोनों पुरुषों के बीच भाईचारे के साथ बचपन की दोस्ती भी रही है, तो उस सम्बन्ध में मैं भी किसी न किसी रूप में जुड़ी ही हूँ। स्त्री और स्त्री के बीच सखी-बहनापा होता है, लेकिन यहाँ बात वैसी नहीं है। यहाँ दो पुरुषों की दोस्ती में से एक पुरुष के टूट जाने के बाद बचे हुए पुरुष और स्त्री के बीच का सम्बन्ध है, उसे सखी-बहनापा कैसे कहा जा सकता है।

आँगन का रास्ता पार कर मुख्य सड़क पर पहुँचते-पहुँचते सावित्री के विचार ने एक और मोड़ लिया। मन ने कहा, जब जीवन भर का साथी बिछुड़ सकता है, जब भगवान तक आँखों से ओझल हो सकते हैं, तब संसार में ऐसे साथी भी मिल सकते हैं जो उम्र या सम्बन्ध की दृष्टि से दूर हों, लेकिन जीवन के किसी खण्ड के साथी बन जाएँ।

अचानक सावित्री को लगा जैसे अपने जीवन की कोई निश्चित दिशा मिल गई हो। जिस स्थान पर एक बार ठोकर लगती है, अगली बार मनुष्य वहाँ आँखें खोलकर सावधानी से चलता है, ताकि फिर वैसी ठोकर न लगे। सावित्री भी अपने जीवन की दिशा सँभालती हुई आगे बढ़ीं।

भोर-भोर अपने दरवाजे पर सावित्री को देखकर विचारचन का मन दहल गया। पड़ोसी और पुराने साथी होने के कारण वे गियानचन की पल-पल की स्थिति की जानकारी लेते रहे थे। सावित्री को सामने खड़ा देखकर उनका मन ऐसा बिखर गया कि मुँह से शब्द ही नहीं निकले। एक ओर बचपन के साथी के

परिवार की दशा, दूसरी ओर सावित्री की चढ़ती जवानी और तीसरी ओर दोनों बच्चों का जीवन, तीनों एक साथ उनके सामने आ खड़े हुए। विचारचन का मन भीतर ही भीतर तड़प उठा।

सावित्री भी चुप खड़ी थीं। उनकी चुप्पी जैसे कह रही थी कि जिनके दरवाजे पर आई हूँ, वही कहें कि मुझे रखेंगे या लौटा देंगे। विचारचन का मन उन्मत्त हाथी की तरह भीतर ही भीतर मथ रहा था, लेकिन बोलने के लिए शब्द नहीं मिल रहे थे। गियानचन ऐसी अवस्था में थे कि न उन्हें पूरी तरह मृत कहा जा सकता था, न जीवित। ऐसे समय मुँह से क्या निकाला जाए? छह महीने की बीमारी ने उनकी नस-नस तोड़ दी थी। अब वे खड़े नहीं हो सकते थे। इसलिए परिवार के लिए स्वयं खड़ा होना पड़ेगा और उस 'स्वयं' का अर्थ अब सावित्री ही थीं।

लेकिन समाज ऐसी मचकी की तरह है, जो दोनों ओर झूलती हुई आगे बढ़ने के दोनों रास्ते रोक देती है। एक ओर विधवा स्त्री को अशुभ माना जाता है, दूसरी ओर स्त्रियों के साथ होने वाले अत्याचार किसी से छिपे नहीं हैं। फिर भी जब सावित्री अपनी पीड़ा लेकर दरवाजे पर आई हैं, तो अपने पास जितनी शक्ति है, उसी से उनकी सहायता की जा सकती है।

मन में दृढ़ता लाकर विचारचन बोले-

"जैसे आपके पति और बच्चों के साथी हैं, वैसे ही गियानचन मेरे भी साथी हैं। दैवी शक्ति भी कोई चीज है, जहाँ मनुष्य की शक्ति कमजोर पड़ जाती है। लेकिन मनुष्य का जीवन केवल उतना ही नहीं है। उसे कठिनाई पार करने का प्रयत्न मनुष्य को स्वयं भी करना पड़ता है।"

विचारचन की गम्भीर बात सुनकर सावित्री के मन में जैसे कुछ दृढ़ता जागी। अपनी वर्तमान स्थिति को देखते हुए उन्होंने पूछा-

"अब क्या करें?"

सावित्री के मुँह से 'अब क्या करें?' सुनते ही विचारचन का मन काँप उठा। कारण यह था कि सब समझते हैं कि यह कर्ता-पुरुष की दुनिया है, जो जैसा करेगा वैसा पाएगा। लेकिन सावित्री की वर्तमान स्थिति अभी वैसी नहीं थी। इस

समय तो पहले पति के मृतप्राय शरीर के भार से अपने को हल्का करना था। बाल-बच्चे हाथ-पैर वाले हैं, समय के साथ बढ़ते ही जाएँगे।

विचारचन बोले-

“निःसंकोच होकर कहिए। जब तक पति चलते-फिरते थे, तब तक आप समाज की लाज-संकोच मानकर चलती थीं। लेकिन अब परिवार के अभिभावक की हैसियत से अपने विचार को बदलना और सँभालना पड़ेगा। आपकी जो इच्छा हो, उसमें जब जिस चीज की आवश्यकता होगी, हम अपनी सामर्थ्य के अनुसार उसकी पूर्ति कर सकते हैं।”

विचारचन की बात सुनकर सावित्री के मन में बिजली की तरह प्रकाश कौंधा। एक क्षण में उन्हें लगा जैसे संसार के सभी परिवारों के बीच अपना परिवार भी स्पष्ट दिखाई दे गया हो। लेकिन बिजली की चमक जैसे तुरन्त छिप जाती है, वह अनुभूति भी क्षण भर में ओझल हो गई।

विचारचन के मन में यह बात थी कि मनुष्य के जीवन का ही कोई ठिकाना नहीं, स्त्री का जीवन तो और अधिक असुरक्षित रहा है। पराश्रित रहने के संस्कार के साथ स्त्री का विचार भी इतना लचर-पचर हो गया है कि अपनी बात स्पष्ट रूप से कहना उसके लिए कठिन हो जाता है। इसलिए भविष्य की दिशा में जीवन की कोई रूपरेखा अभी से दिखाई दे, यही अच्छा होगा।

इसी बीच सावित्री बोलीं-

“दोनों परिवारों के बीच अब तक जो सम्बन्ध रहा है, वह वैसे ही जीवित बना रहे, बस यही चाहती हूँ।”

सावित्री अपनी बात ऐसे कह रही थीं, जैसे कोई स्त्री सिर ढककर रसोई में सिद्धा का चावल चढ़ाती है। उन्होंने भी अपने विचार का सिर संकोच से ढककर बात कही, लेकिन मन में भाव यह था कि मित्र ही नरक जैसी कठिन धारा पार करने में सहायक होते हैं।

विचारचन सावित्री के मन के भाव को समझ गए। उनके दृढ़ मन ने कहा कि स्त्रियों को अपने विचार को ढँककर कहने की आदत पड़ गई है, लेकिन पुरुष यदि वास्तव में पुरुष है तो वह बात स्पष्ट क्यों न कहे? पुरुष होने का अर्थ उसमें

पुरुषपन होना है। इसमें अन्तर लिंग-भेद से नहीं, विचार-भेद से आता है। जिस तरह पौरुष कुछ पुरुषों में जागता है, उसी तरह कुछ स्त्रियों में भी जागता है। लेकिन पीढ़ी-दर-पीढ़ी स्त्री के विचार में पराश्रित रहने का संस्कार रहा है, इसलिए उसके विचार में कमी आई है।

एक दूसरी बात भी थी। समाज में परिवारों के बीच बनी दूरियों ने पुरुष के मन में स्त्री के प्रति वासना को भी बढ़ाया है। इस बिन्दु पर आते ही समाज के लोग दाँत दिखाकर पीछे हट जाते हैं। यद्यपि इसे सोलहों आना सत्य भी नहीं कहा जा सकता।

प्राचीन काल से समाज में ऐसे लोग भी होते आए हैं, जो दोनों हाथ बढ़ाकर नरकीय धारा में बहते राहगीरों को पकड़कर ऊपर निकालने का प्रयास करते रहे हैं और आज भी करते हैं। लेकिन उस धारा की अपनी चाल ही कई बार ऐसी गिरगिट जैसी होती है कि मन को तोड़ती रहती है। इसी से परिवार और समाज में ऐसी दरारें पड़ जाती हैं, जिन्हें तुरन्त भरना कठिन होता है।

दोनों हाथ आगे बढ़ाते हुए विचारचन बोले-

“गियानचन भले इस संसार से जा रहे हैं, लेकिन आप तो उन्हीं का अंग हैं। इसलिए जिस तरह बच्चों के साथ गियानचन को अपना साथी मानता आया हूँ, उसी तरह आपको भी मानता हूँ।”

विचारचन की बात सुनकर सावित्री के मन में धैर्य का अंकुर फूट पड़ा। अंकुर फूटते ही अब तक परिवार चलाने की जो आशा उनके मन में थी, उसका आर्थिक आधार अचानक सामने आ खड़ा हुआ। अपनी विवशता प्रकट करते हुए सावित्री बोलीं-

“मुझे तो खेती-पथारी करने का ढंग भी नहीं आता, तब...?”

निर्णायक मोड़ पर पहुँचकर विचारचन बोले-

“जितना आगे का जीवन पकड़कर चलने की सोच रही हैं, वह उतना आसान नहीं है। अभी जो बड़ा बोझ सिर पर है, पहले उसे पार लगाइए।”

दिशाहीन सावित्री जैसे कुछ देख ही नहीं पा रही थीं। वे बोलीं-

"मैं तो परिवार चलाने का तौर-तरीका कुछ समझ ही नहीं पा रही हूँ। फिर इसे चलाना है, तो कैसे चलेगा?"

आशा से भरे विचारचन ने सावित्री के भीतर कर्म का आत्मबल जगाते हुए कहा-

"आप आगे बढ़िए। मैं पीछे-पीछे आ रहा हूँ। आँखों के सामने उपस्थित घटना का समाधान बाद की बातों के विचार से अधिक उपयोगी है। इसलिए तनिक भी सन्देह मत कीजिए।"

सावित्री के विचारचन के यहाँ पहुँचने से पहले ही गियानचन के प्राण निकल चुके थे। ❑

पाँचवाँ पड़ाव

चैत मास की अमावस्या की रात की तरह सावित्री के मन में घनघोर अँधेरा फैल गया। जीवन की धरती पर आगे कदम बढ़ाने का साहस ही नहीं हो रहा था। लेकिन काल तो काल है। जब सामने आकर खड़ा हो जाता है, तब कुछ न कुछ करना ही पड़ता है। चाहे हार मानकर, चाहे हारकर दिशाहीन होते हुए, कुछ न कुछ करना पड़ता ही है।

उसी समय विचारचन पहुँचे। उन्हें देखते ही सावित्री के मन में ऐसा लगा, जैसे चैती दुर्गा का कलश स्थापित हो गया हो। विचारचन के मन ने भी संकेत दे दिया कि शायद गियानचन के प्राण निकल चुके हैं। सावित्री जोर-जोर से रो भी नहीं रही थीं कि किसे सुनाएँ। समाज भी तो एकभग्गू, अर्थात अपने-अपने हिस्से में बँटा हुआ है। लेकिन पति-वियोग का दर्द इतना गहरा था कि आँखों से बहने वाले आँसुओं के अतिरिक्त उसे और कोई शान्त-शीतल नहीं कर सकता था। इसलिए उनकी दोनों आँखों से आँसुओं की धारा बह रही थी और मन में हूक भी उठती जा रही थी।

विचारशील विचारचन ने सावित्री की पीड़ा की धधकती आग को मानो ढँकते हुए कहा-

“देखिए, रोने-कलपने से कुछ नहीं होता। जीवन का सत्य यही है कि जिसने धरती पर जन्म लिया है, उसे मरना ही है। गड़बड़ी केवल इतनी है कि मृत्यु का समय निर्धारित नहीं है। जो भवितव्य था, वह हो गया।”

बोलते-बोलते विचारचन का विचार इतना आवेग में चढ़ने लगा कि उनका मन हुआ, जीवन भर के कर्म से जुड़े सारे विचार सावित्री को सुना दें। लेकिन मन ने स्वयं समझाया कि आम का पेड़ लगाते समय आम के फल का सुख अनुभव नहीं किया जाता। तब इतना ही विश्वास रहता है कि धरती में आम

का पेड़ लगाया है, तो जब मंजराने और फलने का समय आएगा, वह मंजराएगा और फलेगा ही।

विचारचन ने अपने मन को पोखर के पानी की लहरों की तरह धीरे-धीरे शान्त किया। मन स्थिर होते ही विचार आया कि पार्थिव शरीर को जितनी जल्दी हो सके, घर से बाहर कर देना समाज की रीति रही है। यद्यपि आज के परिवेश में यही रीति कई बार सामाजिक परिस्थिति के प्रतिकूल भी पड़ जाती है। जब समाज का जीवन खेती-किसानी पर आधारित था और परिवार सिमटा हुआ, एक साथ रहता था, तब यह व्यवस्था अनुकूल थी। लेकिन आज परिस्थिति ऐसी हो गई है कि माता-पिता की मृत्यु होने पर मुखाग्नि पुत्र देगा और वही पुत्र यदि दूर देश में नौकरी करता हो, तो अनेक बाधाएँ उपस्थित हो जाती हैं। उसे नौकरी से छुट्टी लेनी पड़ती है और दूरी अधिक होने पर रास्ते में भी अधिक समय लगता है। इसलिए माता-पिता के पार्थिव शरीर को बर्फ में सुरक्षित रखने की आवश्यकता भी पड़ने लगी है।

दोनों आँखों से बहते आँसू साड़ी के आँचल से पोंछकर सावित्री ने विचारचन की ओर देखा और बोलीं-

“अब क्या करें?”

विचारचन तुरन्त बोले-

“अभी आगे-पीछे कुछ मत सोचिए। पहले टोले-पड़ोस में घूमकर लोगों से शव-दाह में साथ देने के लिए कहिए। बाद का काम बाद में सोचेंगे। दुकान का काम मैं कर आता हूँ, अर्थात नया वस्त्र ले आता हूँ।”

विचारचन की बात सुनकर सावित्री का मन काँप उठा। प्रश्न था, किस मुँह से समाज के सामने यह बात कहें?

यहाँ ‘किस मुँह’ का अर्थ केवल संकोच नहीं था। गियानचन के प्राण शरीर से निकलते ही सावित्री के वैधव्य-जीवन का जन्म हो चुका था। एक नवविधवा अपने पति के मृत शरीर के अग्निदाह की सूचना समाज को कैसे दे?

सावित्री को हिचकते देखकर विचारचन फिर बोले-

"अभी जो-जो विहित कर्म करने हैं, उन्हें क्रमशः करते चलिए। क्रिया को क्रम से पूरा करते चलेंगे, तभी पार-घाट लगेगा।"

अपनी विवशता प्रकट करते हुए सावित्री बोलीं-

"अभी हम दोनों ही हैं। इसलिए पहले हम दोनों मिलकर पार्थिव शरीर को घर से निकालकर तुलसी चौरे के पास लिटा दें।"

सावित्री की बात से विचारचन को अपनी छूटी हुई बात याद आई। मन ने स्वीकार किया कि सावित्री ठीक कह रही हैं। वे बोले-

"अच्छा हुआ, आपने याद दिला दिया। आँगन का काम आप सँभालिए और बाहर का काम मैं समेटकर आता हूँ।"

दोनों ने गियानचन को घर के बिछावन से उठाया और आँगन में तुलसी चौरे के पास उत्तर की ओर सिर करके लिटा दिया। दो अगरबत्तियाँ जलाकर उनके सिर के सामने धरती में गाड़ दीं।

पाँच वर्ष का रघुनाथ और दो वर्ष की राधा भी आँगन में थे। बालबोध रघुनाथ बैठा हुआ सब कुछ देख रहा था। अबोध राधा भी टकटकी लगाए देख रही थी।

गियानचन के पार्थिव शरीर को तुलसी चौरे के पास लिटाकर विचारचन आँगन से बाहर निकले तो मन में आया कि अच्छा होगा, गाछी ले जाने से पहले की सारी तैयारी कर ली जाए। बाँस काटने से लेकर शव बाँधने की रस्सी बटने तक के काम के लिए दो लोगों को पहले से तैयार करना जरूरी है। कपड़े का काम बाद में होगा, जब चचरी बनकर तैयार हो जाएगी।

रास्ते में चलते हुए विचारचन आगे भी बढ़ते गए और घर-घर यह कहते गए कि गियानचन का निधन हो गया है, इसलिए शव-दाह के समय अपनी उपस्थिति दीजिए।

समाज में आज भी यह चलन जीवित है कि शव-दाह के समय कहने या न कहने पर भी लोग साथ देने पहुँचते हैं।

कुछ आगे बढ़ने पर विचारचन के मन में आया कि शव-दाह के लिए ईंधन

की आवश्यकता भी होगी। अचानक उनका ध्यान बिजली की ओर गया। जहाँ विद्युत शवदाह की सुविधा है, वहाँ लोग बिजली से शव-दाह करते हैं, लेकिन गाँव में वैसी सुविधा नहीं है। गाँव में बिजली आ तो गई है, किन्तु अभी उसने मुख्यतः डिबिया के प्रकाश की आवश्यकता पूरी की है और कुछ-कुछ पंखे का काम करती है। बिजली तो ऐसी शक्ति है जिससे जीवन में भी अनेक प्रकार की शक्ति आती है, लेकिन गाँव में वह अभी उस रूप में उपलब्ध नहीं है।

शहर-बाजार की बात से मन हटाकर विचारचन सोचने लगे कि गियानचन के जितने आम के पेड़ थे, बीमारी की दौड़-धूप में बिक गए। यदि कुछ दूसरे किस्म के पेड़ बचे भी हों, तो उनसे शव-दाह का काम नहीं चलेगा।

समाज में शव-दाह के उपायों पर उनका मन विचार करने लगा। मृत शरीर के संस्कार की अनेक विधियाँ और व्यवहार समाज में चलते आए हैं। जिनके पास साधन है, वे चन्दन की लकड़ी से दाह करते हैं। जिनके पास चन्दन का सामर्थ्य नहीं, वे आम की लकड़ी से। जिनके पास वह भी नहीं, कोई पटुआ की सूखी डंठलों से दाह करता है, तो कोई सरपत-पटेर से। जिसके पास इतना भी नहीं, वह शव को मिट्टी के नीचे गाड़ देता है। यदि गाँव के पास बहती धारा हो, तो उसमें प्रवाहित भी कर देता है। रीति और व्यवहार अनेक हैं, लेकिन कोई न कोई विधि अपनानी ही पड़ती है।

सावित्री के सामने जो समस्या उपस्थित हुई थी, उसका मूल प्रश्न भी यही था। अब समाज में गोरहा-गोइठों से शव-दाह करने का एक नया व्यवहार भी प्रचलित हो चुका था। गोरहा-गोइठों का विचार आते ही विचारचन के मन में कुछ प्रसन्नता हुई, क्योंकि गाँव-समाज में अब भी वे सबसे सस्ते साधनों में हैं। जो सस्ता है, वह इस परिस्थिति में सहज भी है।

शव-दाह के ईंधन से विचारचन का ध्यान मुखाग्नि पर गया। मुखाग्नि का विचार आते ही समाज के अनेक उदाहरण मन में घूमने लगे। तीन-चार वर्ष का बच्चा भी मुखाग्नि देता है। मृत्यु से श्राद्ध-कर्म तक सामान्यतः तेरह दिन लगते हैं, लेकिन इस क्रिया में भी समाज में अलग-अलग परम्पराएँ हैं। कुछ जातियों में तेरह दिन का कर्म होता है, कुछ में पन्द्रह दिन का और कुछ में पूर्णमासी तक,

अर्थात लगभग तीस दिन का। इससे भी कठिन स्थिति तब होती है, जब एक महीने के भीतर परिवार या दियाद में दूसरी मृत्यु हो जाए। तब कर्म की अवधि एक महीने और आगे बढ़ जाती है। अन्ततः विचारचन का मन तेरह दिन की क्रिया पर आकर ठहर गया।

लेकिन विचार वहीं नहीं रुका। तेरह दिनों के क्रिया-कर्म भी कई प्रकार के हैं। कोई 'वृषौ कर्म' करता है, कोई 'पंचदान कर्म', कोई 'कुरसी कर्म', अर्थात साधारण कर्म करता है और कोई वह भी नहीं करता। विचारचन के मन में आया कि यदि अपने परिवार का काम होता तो अपने विचार से कुछ बदल भी सकते थे, लेकिन दूसरे परिवार के संस्कार में कुछ कहेंगे तो व्यर्थ ही कर्म में बाधा उपस्थित हो सकती है। इसलिए अच्छा होगा कि समाज के पाँच लोगों से विचार-विमर्श करके आगे का काम किया जाए। कहा भी गया है-

"पाँच मिलि करी काज, हारने-जीतने कोनो ने लाज।"

अर्थात पाँच लोग मिलकर काम करें तो हार हो या जीत, किसी एक को लज्जा नहीं होती।

तेरह दिन के कर्म के विषय में विचारचन मन ही मन पूरी प्रक्रिया सुलझाने लगे। जब बेचारी सावित्री दोस्तीनी, अर्थात मित्र की पत्नी के रूप में अपना भार उनके ऊपर डाल चुकी थीं, तब उनका भी दायित्व था कि किसी कर्म में विघ्न-बाधा न आए। यदि कोई चूक हुई तो समाज सावित्री को अबूझ और अनाड़ी स्त्री कहकर अपना पल्ला झाड़ लेगा और अन्ततः विचारचन का ही मुँह नोचेगा, उन्हीं के मुँह पर थूकेगा।

अपने मुँह पर थूक पड़ने की बात मन में आते ही विचारचन की चिन्ता और बढ़ गई। जैसे कोई वृक्ष अपने जन्म से मृत्यु तक का इतिहास अपने भीतर सँजोए रहता है, वैसे ही समाज भी अपने जन्म से मृत्यु तक का इतिहास अपने गर्भ में सँजोए हुए है।

अचानक विचारचन का ध्यान अपने बीते बीस-पच्चीस वर्षों के जीवन पर चला गया। पच्चीस वर्ष का अर्थ जन्म से अब तक की आयु और बीस वर्ष का अर्थ वह समय, जब बुद्धि ने अपने ढंग से संसार को समझना आरम्भ किया। बच्चे

का जन्म कैसे होता है, भले ही वह समाज के कुछ लोगों के बीच सम्पन्न होने वाला कर्म हो, लेकिन जानते तो सभी हैं। प्रसव-पीड़ा आरम्भ होते ही घर-परिवार के लोग प्रसव कराने की व्यवस्था में लग जाते हैं, भले शहर-बाजार के लोग अस्पताल की व्यवस्था करने लगें। खैर, अभी जन्म की प्रक्रिया पर विचार करने का समय नहीं है। सामने मृत्यु की प्रक्रिया खड़ी है, इसलिए उसी पर विचार करना उचित है।

इन्हीं विचारों के बीच विचारचन कपड़े की दुकान पर पहुँच गए।

दुकान पर पहुँचते ही विचारचन के मन में एक विचित्र-सा भाव उठा कि दुकान-दौरी करने वाले लोगों को सबसे घटिया माना जाता है। यहाँ इसका अर्थ यह नहीं कि वस्तु का उत्पादन करने वाला सर्जक हुआ और वस्तु को आगे-पीछे पहुँचाने वाला, दुकानदारी करने वाला इसलिए घटिया हो गया। अगले ही क्षण विचारचन के मन ने गवाही दी कि लोग दुकानदार को चाहे जितना घटिया मानें, लेकिन यह भी नहीं कहा जा सकता कि कफन के कपड़े की कीमत में दुकानदारों ने अपनी ईमानदारी पूरी तरह खो दी है। कफन की चोरी शुरू हो जाने के बाद भी इतनी ईमानदारी अब तक बची हुई है।

विचारचन ने मृत्यु-संस्कार के लिए आवश्यक कपड़े की माँग रखी और दुकानदार ने भी अपने अनुभव के अनुसार कपड़ा निकालकर उसका मूल्य बता दिया।

कफन लेकर विचारचन दुकान से आगे बढ़े ही थे कि गियानचन को मुखाग्नि देने का प्रश्न फिर अचानक उनके मन में उठा। परिवार में दो ही ऐसे व्यक्ति थे, जो मुखाग्नि दे सकते थे। पत्नी के रूप में स्वयं सावित्री और पुत्र के रूप में रघुनाथ। रघुनाथ अभी बालबोध है। खेलते-कूदते तेरह दिन की क्रिया भी पार कर लेगा, लेकिन सावित्री वैसी नहीं हैं। यदि वे मुखाग्नि देंगी तो कर्ता का पूरा दायित्व उन्हीं पर आ जाएगा। जन्म और मृत्यु के अवसर पर वैसे ही सामान्य दिनों की अपेक्षा परिवार का काम बहुत बढ़ जाता है और गियानचन के परिवार में दूसरा कोई काम सँभालने वाला भी नहीं है। इसलिए विचारचन को उचित लगा कि मुखाग्नि रघुनाथ से ही दिलाई जाए।

गियानचन के घर पहुँचते ही विचारचन ने देखा कि जैसे गन्ने की मिल में गन्ने से चीनी बनने तक की अनेक प्रक्रियाएँ एक साथ चलती रहती हैं, उसी तरह यहाँ भी शव-दाह की सारी तैयारियाँ साथ-साथ चल रही थीं। कोई शव बाँधने की रस्सी बट रहा था, कोई बाँस काटकर उसे आवश्यक आकार दे रहा था, कोई बल्ला-फट्ठी तैयार कर रहा था, कोई कुम्हार के यहाँ से बरतन ला रहा था और कोई ठेले पर गोरहा-गोइठे लाने गया था। छोटे आकार के गोरहे हों तो लगभग दो सौ लगेंगे और बड़े आकार के हों तो सौ-सवा सौ में भी काम चल जाएगा। एक बार रिक्शे पर लादकर आ जाएँ तो सारी व्यवस्था हो जाएगी।

गोरहा भरोसेमन्द ईंधन है। लकड़ी की तरह उसमें काटने-चीरने की झंझट नहीं। गड्ढा खोदकर बीच में पार्थिव शरीर को सजाकर रखिए, आग दीजिए और वापस चले आइए।

दरवाजे पर पहुँचकर विचारचन ने चेतनाथ से कहा-

“चेतू भाय, कपड़े को देख लीजिए।”

जिस तरह मन्त्र जानने वाले के होंठों पर मन्त्र सहज रहता है, उसी तरह चेतनाथ को कफन के कपड़े का पूरा ज्ञान था। मृत शरीर को ढकने से लेकर कर्ता के शरीर और गले में पहने जाने वाले उत्तरीय तक किस कपड़े की कितनी आवश्यकता होगी, इसकी चर्चा उनकी जुबान पर थी। कर्ता के वस्त्र तक की जानकारी का उन्हें अभ्यास था। वे तुरन्त नाप-नापकर विहित वस्त्र तैयार करने लगे।

शव-दाह की सारी बाहरी तैयारियाँ देखकर विचारचन आँगन में पहुँचे। सावित्री को सब जानकारी देते हुए पूछा-

“बाहर का सब काम सँभल गया। आँगन की क्या स्थिति है?”

विचारचन की बात सुनकर सावित्री ने एक बार आँखें उठाकर देखा, फिर दृष्टि नीचे कर बोलीं-

“बाहर की तैयारी से ही तो आँगन की तैयारी होगी।”

सावित्री के मन में पति की मृत्यु का दुःख वैसा नहीं था, जैसा उस स्त्री को

होता है जिसका पति अचानक किसी दुर्घटना में मर जाए। इसका अर्थ यह भी नहीं कि उनका दुःख कम था। वे लगातार छह महीने तक पति की मृत्यु के मैदान में डटी रही थीं। जैसे-जैसे गियानचन मृत्यु के निकट आते गए, वैसे-वैसे सावित्री में अपने ऊपर आने वाले भार का बोध जागता गया। छह महीने से पति के दायित्व में जो खालीपन बनता गया, सावित्री उसे धीरे-धीरे भरती रही थीं। इसीलिए उनके भीतर जीवन जीने की आशा भी जाग चुकी थी।

इन छह महीनों में ऐसी स्थितियाँ भी आई थीं, जब उन्हें पूरा विश्वास हो गया था कि पति जीवन की आशा से सोलहों आना मुँह मोड़ चुके हैं। क्रमशः कर्म में लगते रहने से सावित्री के मन में यह विश्वास भी बनने लगा था कि पति की प्रत्यक्ष उपस्थिति न रहने पर भी वे अपने परिवार को जीवित और गतिशील रख सकती हैं। हाँ, कभी-कभी पति की असह्य वेदना को सँभालने में स्वयं को असफल पाकर वे मुँह से कह भी उठती थीं-

“मृत्यु कहाँ छिपी बैठी है कि आकर इन्हें ले नहीं जाती?”

आज सावित्री जीवन की दो सीमाओं के बीच खड़ी थीं। इसलिए मन में जितना हर्ष था, उतना ही विषम भाव भी था। दो पाशों के बीच उनका मन अटका हुआ था।

उधर सब काम क्रम से सँभलता देखकर विचारचन के मन में अगले काम की ओर बढ़ने की इच्छा हुई। उन्होंने सोचा, क्यों न सावित्री से सीधे कह दूँ कि मुखाग्नि बेटे से दिलाना उचित होगा। रघुनाथ बच्चा है, इसलिए परिवार के दूसरे कामों की उससे कोई अपेक्षा नहीं है। लेकिन यदि सावित्री स्वयं मुखाग्नि देंगी तो कर्ता का पूरा भार उन्हीं पर आ जाएगा। इससे परिवार के दूसरे काम बाधित होंगे और उनका पूरा समय विधि-विधान में लग जाएगा।

लेकिन अगले ही क्षण विचारचन के मन ने कहा कि दरवाजे पर समाज के लोग भी उपस्थित हैं। इसलिए अच्छा होगा कि यह बात सबके सामने रखी जाए और सर्वसम्मति से निर्णय लिया जाए। पाँच लोग मिलकर विचार करेंगे तो पाँच प्रकार के जीवनानुभव भी सामने आएँगे। समय के अनुकूल क्या उचित है और पुराना पड़ जाने के कारण क्या अनुचित हो चुका है, इसका समाधान समाज

ही करे।

समाज पर दृष्टि पड़ते ही विचारचन के मन में आया कि अब मृत्यु-क्रिया के दोनों रूप, अकर्म और सकर्म, बार-बार सामने आएँगे। इसलिए क्यों न सावित्री को अभी से बता दिया जाए कि आँगन से शव निकलते ही घर की छूत लगी वस्तुओं को बाहर निकालना होगा और घर-आँगन को बुहार-लीपकर शुद्ध भी करना होगा। तेरह दिनों के भीतर तेरहों कर्म होते हैं, जिनमें घरवाली को लगाए रखा जाता है। एक ओर परिवार का एक कमाने वाला व्यक्ति चला गया और दूसरी ओर जो खेत-पथार बचा है, उसे भी बेच-बिकीनकर चढ़ावे में चढ़ा दिया जाए!

विचारचन ने अपने विचार को वहीं रोक लिया। मन ने कहा कि यह केवल व्यक्तिगत विचार का विषय नहीं, सामूहिक विचार का विषय है। अधिक से अधिक अपना चिन्तन सबके सामने रखा जा सकता है। यदि समूह, अर्थात समाज, किसी अनुचित कार्य को प्रतिष्ठा समझकर अपने विचार को दाँव पर लगाए तो लगाए, उसे वे बलपूर्वक रोक नहीं सकते; लेकिन उचित कार्य को प्रतिष्ठित करने वाला अपना विचार तो रख ही सकते हैं।

अचानक विचारचन का ध्यान तत्काल सामने उपस्थित काम पर लौट आया। आँगन से निकलती सावित्री से उन्होंने कहा-

“जैसी तैयारी आपके आँगन में है, वैसी ही तैयारी दरवाजे पर भी दिखाई दे रही है।”

विचारचन को दरवाजे पर आते देखकर शव बाँधने की रस्सी समेटते हुए फुचना बोला-

“विचारचन चाचा, कीर्तन-भजन की व्यवस्था भी की है न? वे लोग अभी तक कहाँ हैं?”

फुचना को फटकारते हुए जीबछ बोले-

“अरे फुचना, इतना भी नहीं समझता कि कैसी मृत्यु हुई है?”

फुचना अवाक् रह गया। फिर कुछ नहीं बोला।

तीन दिन बाद छाउर-झँप्पी, अर्थात राख ढँकने की क्रिया के साथ श्मशान का काम सम्पन्न हुआ। शास्त्रीय कर्म आगे चलता रहेगा, लेकिन शरीर से जुड़ी सारी क्रिया समाप्त हो गई। अर्थात चिता की आग में यदि शरीर का कोई अंश बचा रह गया हो तो उसे मिट्टी के नीचे ढँक दिया जाता है। यहाँ यह भी है कि जिस मृत शरीर को अग्नि नहीं दी जाती, उसे वैसे ही मिट्टी के नीचे गाड़ दिया जाता है। कुछ सम्प्रदायों में मृत शरीर को बिना जलाए गाड़ना अनिवार्य संस्कार के रूप में भी प्रचलित है।

विचारचन के मन में आया कि जब गियानचन की पत्नी ने इतना बड़ा भार उनके ऊपर सौंप दिया है, तब यदि प्रत्येक आवश्यक काम से पहले स्वयं सतर्क नहीं रहेंगे तो ऐसा भी हो सकता है कि काम समय से पीछे होता जाए और समय की आवश्यकता से भी पिछड़ जाए। जो काम समय से पीछे पड़ जाता है, वह धीरे-धीरे अपना महत्त्व भी खो देता है।

यही सोचकर दोपहर लगभग दो बजे विचारचन ने गियानचन के घर जाने का निश्चय किया कि आज के शेष काम की जानकारी घरवाली को समय रहते दे देना उचित होगा। अपने घर से निकलकर रास्ते पर आए तो मन में विचार उठा कि क्यों न किसी अनुभवी व्यक्ति को भी बीच में रखकर बात की जाए। अपने यहाँ कहा भी गया है कि सौ अवैदिकों से एक वैदिक अच्छा होता है।

अनुभवी व्यक्ति का ध्यान आते ही विचारचन के मन में आया कि किसी पड़ोसी अनुभवी व्यक्ति को साथ रखना और अच्छा होगा, क्योंकि एक ही टोले में रहने के कारण अनेक व्यवहारों में क्षेत्र के अनुसार कुछ न कुछ भिन्नता भी होती है। गियानचन के घर जाने से पहले विचारचन देवन के यहाँ पहुँचे।

दरवाजे पर बैठे देवन ने विचारचन को देखते ही कहा-

“विचारचन, गियानचन का एक प्रक्रिया-कर्म तो पूरा हो गया।”

बिना आगे-पीछे सोचे विचारचन बोले-

“हाँ।”

देवन ने कहा-

"लेकिन आज की जो दूसरी क्रिया है, वह अभी बाकी है न?"

'बाकी' शब्द सुनते ही विचारचन के मन में अचानक बात कौंधी। आज दिन का कर्म छाउर-झँप्पी, अर्थात राख ढँकने का काम पूरा हुआ है, लेकिन जो लोग शव-दाह के लिए श्मशान गए थे, उनके लिए रात का भोज अभी बाकी है। वह तो रात में होगा।

विचारचन बोले-

"देव भाय, दिन का काम पूरा हो गया, लेकिन रात का अभी बाकी है।"

विचारचन यह भी जानते थे कि जो लोग श्मशान जाकर शव-दाह की प्रक्रिया में साथ देते हैं, उन्हें उसी रात भोजन कराया जाता है। इसे एक प्रकार का मेहनताना भी कहा जा सकता है और यह उचित भी है। शव-दाह में सवा पहर, अर्थात लगभग पौने चार घंटे लग जाते हैं। उसके बदले उसी रात भोजन कराने की परम्परा चली आई है। इस प्रकार शरीर से जुड़ी सारी क्रियाएँ सम्पन्न हो जाती हैं और कुछ लोगों को हाथ धुलाने का कर्म भी पूरा कराया जाता है।

फिर भी विचारचन ने अपने को अनजान बनाते हुए पूछा-

"और क्या बाकी है, भाय साहब?"

विचारचन की छिपी हुई बात पर पर्दा डालते हुए देवन बोले-

"विचारचन, मृत्यु की क्रिया तो संसार में प्रतिदिन होती ही रहती है। लेकिन एक समाज से दूसरे समाज और एक जाति से दूसरी जाति तक उसके व्यवहार में अन्तर होता है। इसलिए आँखों से देखा हुआ भी आदमी कभी-कभी भूल जाता है। शायद आपके साथ भी वही हुआ है।"

अपनी भूल स्वीकारते हुए विचारचन बोले-

"हाँ भाय, ठीक कहते हैं। भूलें भी क्यों नहीं? परिवार के जाल-जंजाल में पड़े रहने पर क्या एक मिनट भी चैन मिलता है कि भगवान का भजन करें, अर्थात समाज के सामूहिक क्रिया-कलापों में लगे रहें। आप लोगों के प्रताप से ही किसी तरह जीवन चल रहा है।"

अपनी प्रशंसा सुनकर देवन बोले- "विचारचन, अच्छा होगा कि

गियानचन के घर ही चलें। वहाँ जो बात करेंगे, घरवाली भी सुनेंगी। जो विचार उन्हें अनुकूल लगेगा, उसके अनुसार करेंगी और जो प्रतिकूल लगेगा, वह नहीं करेंगी।"

देवन की बात विचारचन को भी उचित लगी।

दोनों, देवन और विचारचन, गियानचन के घर पहुँचे। सावित्री को संकेत से पास बुलाया और स्वयं भी बैठ गए। बैठते ही विचारचन बोले-

"मृत्यु के बाद का पहला कर्म आज ही पूरा होगा। जिस तरह छाउर-झँप्पी से श्मशान का काम पूरा हुआ, उसी तरह श्मशान से लौटने के बाद जो लोग शव-दाह में साथ गए थे, उन्हें मेहनताना देकर घर का आज का काम भी पूरा किया जा सकता है।"

सावित्री के मन की बात जानने के लिए विचारचन अपनी बात आधी ही रखकर रुक गए। सावित्री के मन में भी था कि जो चले गए, वे चले गए। जीवन में जैसा कर्म किया है, समाज उसी रूप में उन्हें याद करेगा। लेकिन समाज में मृत्यु के बाद के अनेक बन्धन भी हैं। दसवें दिन नह-केश से कर्म आरम्भ होता है और उस दिन भी समाज को भोज देना पड़ता है। उसके अगले दिन, अर्थात एकादशा के दिन से श्राद्ध की पहली क्रिया आरम्भ होती है, जिसमें आँगन से पोखर के घाट तक श्राद्ध-कर्म होता है और समाज को भोजन भी कराया जाता है। यह क्रम श्राद्ध की अन्तिम क्रिया तक चलता रहता है।

जिस तरह विचारचन सावित्री के मन की बात समझना चाहते थे, उसी तरह समाज की अपेक्षा समझने के उद्देश्य से सावित्री बोलीं-

"ये सब तो पुरुष-पात्र हैं। मैं जो कुछ हूँ, स्त्री ही हूँ। जो करेंगे, यही लोग करेंगे। मुझसे जो कहेंगे और जहाँ तक मेरी सामर्थ्य होगी, करती जाऊँगी। जहाँ सामर्थ्य नहीं होगी, वहाँ दोनों हाथ जोड़कर कह दूँगी कि एक लोटा पानी पीकर ही मेरा उद्धार कर दीजिए।"

सावित्री की बात सुनकर देवन जैसे अकबकाकर चुप हो गए, वैसे ही विचारचन भी मौन रह गए। देवन इसलिए कुछ नहीं बोल रहे थे कि विचारचन ही कर्ता-धर्ता के रूप में आगे बढ़कर अपना विचार रखेंगे। दूसरी ओर विचारचन

देवन के मुँह की ओर देखने लगे। उनके मन में था कि देवन भाय अनुभवी हैं, वे जो कहेंगे वही मान लिया जाएगा। समाज की किसी बात को समझने-बुझने की आवश्यकता पड़े तो आगे देवन भाय का नाम लिया जा सकेगा कि यह उन्हीं का विचार था।

देवन साठ वर्ष की उम्र पार कर चुके थे। इसलिए भले कोई उन्हें सनकी ही क्यों न माने, यह भी नहीं कहा जा सकता कि वे चार्वाक जैसे वैदिक ऋषि न बन सकें।

देवन को बोलने के लिए प्रेरित करते हुए विचारचन बोले-

“देवन भाय, सभी आपको सदा से भाय कहते आए हैं, इसलिए मैं भी भाय ही कहता हूँ। लेकिन आप तो बाबा की उम्र के हैं। इसलिए आपका विचार ही सनातन विचार माना जाएगा।”

विचारचन की बात सुनकर देवन के भीतर विचार जाग उठा। मन में आया कि समाज में जैसे रीति है, वैसे ही कुरीति भी है और कई बार कुरीति ही रीति बन जाती है। क्यों न बात साफ-साफ कह दी जाए, जिससे उलझन ही समाप्त हो।

देवन बोले-

“बौआ विचार, समाज में ऐसे समाज भी हैं जहाँ मृत्यु के बाद शव को गंगा में फेंककर शुद्ध को अशुद्ध और अशुद्ध को शुद्ध बनाने का लाभ उठाया जाता है। अपने गाँव-समाज में भी ऐसी बातें हैं।”

देवन के मुँह से अपने मन की बात निकलती सुनकर सावित्री को भीतर ही भीतर प्रसन्नता हुई। लेकिन समाज भी ऐसा नहीं है कि घर-गृहस्थी बेचकर मृतात्मा के उद्धार का कर्म न करे। आज के समय में लोग बाहर जाकर कमाएँ और फिर भोज करें, यह अलग बात है, लेकिन क्या उचित है और क्या अनुचित, इसका निर्णय भी तो उन्हें ही करना होगा।

अपना विचार रखते हुए सावित्री बोलीं-

“आप दोनों विचार करके जो कहेंगे, वही करूँगी।”

विचारचन बोले-

"दसवें दिन फिर विचार कर लेंगे। आज का जो मेहनताना-भोज है, वह मेहनत करने वालों का है। इसलिए आज का काम आज सँभाल लीजिए। आगे की बात आगे समझी जाएगी।"

सावित्री बोलीं-

"इतनी हड़बड़ी में दही कैसे जम पाएगा? भैंस तो साँझ में दुही जाएगी। दूध की व्यवस्था कर भी लें तो पत्तल पर उसे खाया कैसे जाएगा? सब बह जाएगा।" ❑

छठा पड़ाव

आज नौवाँ दिन है, अर्थात गियानचन की मृत्यु का नौवाँ दिन। कल नह-केश का दिन है और तेरह-दिवसीय श्राद्ध का विस्तृत कर्म कल से आरम्भ होगा। इस बिन्दु पर पहुँचकर देवन का मन वैसे ही ठिठक गया, जैसे कोई तीनमुहानी राह पर पहुँचकर ठहर जाए। एक ओर अपने जीवन के काम उनके सामने खड़े थे और दूसरी ओर फन्दे में फन्दा लगी समस्या का समाधान, जिस पर कल सावित्री को विचार देना था।

फन्दे में फन्दा यह था कि समाज सम्प्रदायों में बँटा हुआ है। कोई कहता है कि मैं हिन्दू हूँ, कोई मुसलमान, कोई ईसाई तो कोई यहूदी-पारसी। यह तो ऊपर का फन्दा हुआ। इसके नीचे हिन्दुओं के भीतर अनेक जातियाँ और अनेक व्यवहार हैं। दूसरे सम्प्रदायों में भी ऐसा ही है। इससे और नीचे जाएँ तो एक ही जाति के भीतर भी अनेक उपजातियाँ और अलग-अलग व्यवहार हैं। उनके बीच इतनी दूरी बनी हुई है कि एक-दूसरे को अछोप-अछूत समझकर न आपस में बेटी का वैवाहिक सम्बन्ध करते हैं और न श्राद्ध-विवाह के भोज में एक साथ बैठकर खाते हैं। समझ में ही नहीं आता कि छूत अन्न-पानी में है या मनुष्य और मनुष्य के बीच। लेकिन दान-दक्षिणा लेने का समय आए तो सबके मुँह से निकलता है कि मानवधर्म का निर्वाह प्रत्येक मनुष्य को करना चाहिए।

यहाँ आकर देवन का मन ठहरकर शान्त हुआ। विचार में शान्ति आई तो चित्त में भी शान्ति उतर आई। चित्त शान्त होते ही उनका ध्यान सावित्री की वर्तमान दशा पर गया। मन में आया, भगवान भी कितने निर्दयी हैं। यदि गियानचन को ले ही जाना था तो छह महीने तक इस तरह घिसियाते क्यों रखा? साँप काटने या विष चढ़ने पर आदमी कई बार झटपट चला जाता है। न दवा-दारू में एक पैसा खर्च होता है और न महीनों सेवा-टहल करनी पड़ती है। लेकिन सावित्री के साथ ऐसा नहीं हुआ। छह महीने तक गियानचन की दवा-दारू से लेकर सेवा-

टहल तक सब करना पड़ा। साथ ही लगभग दो बीघा जमीन गिरवी पड़ गई और दस कट्ठे की सम्पन्न गाछी के पेड़ भी बिक गए।

ऊपर से समाज में ऐसे निर्लज्ज लोग हैं कि कोई रास्ते में विधवा का मुँह देख लेने को भदवा, अर्थात यात्रा का अपशकुन मानता है, तो कोई बिना पुरुष की स्त्री, अर्थात मसोमात समझकर उस पर कुदृष्टि भी रखता है।

सावित्री के सम्बन्ध में देवन का विचार जितना गहराता गया, शरीर से पसीना उतना ही निकलने लगा। अचानक उनकी दृष्टि अपने ऊपर गई तो लगा, मैं भी तो सावित्री और गियानचन के इसी समाज का हिस्सा हूँ। क्या समाज का सदस्य होने के नाते मुझे इतना भी सोचने का अधिकार नहीं है कि गियानचन का परिवार जहाँ तक टूटकर नीचे गिर चुका है, वहीं कोई सीमा बाँधकर उसे और नीचे गिरने से रोका जाए और वहाँ से ऊपर उठने की रस्सी पकड़ाकर कुएँ की बाल्टी की तरह ऊपर खींचा जाए?

देवन का मन फिर ठिठक गया। ठिठकते ही सोचने लगे कि आज जब हम इक्कीसवीं सदी में हैं, मेंढक को चीर-फाड़कर उसके सभी अंगों का पता लगा लेते हैं, तब अपने समाज की बँधी-छनी गाँठों को चीर-फाड़कर उनका पता लगाने का प्रयत्न क्यों नहीं कर सकते? अपने मन के घोड़े की लगाम खींचते हुए देवन का मन फिर अपने मूल विचार पर आकर ठहर गया।

संयोग से उसी समय विचारचन भी देवन के यहाँ पहुँच गए। उन्हें देखते ही देवन ने हाथ के संकेत से अपने पास बैठाया। वैसे विचारचन के स्वभाव से देवन भलीभाँति परिचित थे। परिचित होने का अर्थ यह था कि अच्छा विचार भी विचार है और बुरा विचार भी विचार ही है; इन दोनों प्रकार के विचारों के बीच चलने वाले व्यक्ति के रूप में वे विचारचन को जानते थे।

विचारचन के बैठते ही देवन ने पूछा-

"विचार बाउ, आज गियानचन की मृत्यु का नौवाँ दिन है। कल नह-केश होगा।"

देवन की बात सुनकर विचारचन के मन में आया कि पेट की बात देवन भाय कैसे जान गए। सहमति जताते हुए बोले-

"हाँ।"

मृत्यु के बाद की पहली प्रक्रिया का आज अन्तिम दिन था। कल से दूसरी प्रक्रिया आरम्भ होनी थी, अर्थात नह-केश के बाद के कर्म। पहली और दूसरी प्रक्रिया के बीच की बात मन में लाकर देवन बोले-

"विचारचन, पहली प्रक्रिया के तीसरे दिन के कर्म में क्या-क्या किया?"

दूसरे का कोई काम करने के बाद जिस तरह कर्ता अपनी वाहवाही सुनना चाहता है, उसी भाव में विचारचन बोले-

"देवन भाय, शव-दाह से लेकर छाउर-झँप्पी और रात में शव-दाह में साथ गए लोगों को भोजन कराते-कराते इतनी रात हो गई कि भरपेट चैन की नींद भी नहीं सो सका। भोर में ऐसा लग रहा था, जैसे अभी-अभी कोई भारी काम करके लौटा हूँ। पूरा शरीर और हाथ-पैर दुख रहे थे।"

देवन वैसे भी बात को भाँजने-परखने वाले व्यक्ति थे और ऊपर से साठ वर्षों का सामाजिक अनुभव उनके पास कसौटी की तरह था। वे बोले-

"छाउर-झँप्पी दिन में हुई, रात में भोज-भात भी हुआ, लेकिन छाउर-झँप्पी के बाद 'सारा' के पास पूजा भी की जाती है या नहीं?"

देवन का प्रश्न सुनकर विचारचन अकबका गए। कारण यह था कि उनके अपने जातीय समाज की परम्परा में 'सारा' के पास पूजा करने का चलन नहीं था। वैसे भी बहुत-सी बातें भरे पेट की सूझ की तरह परिस्थिति और परम्परा से बनती हैं। विचारचन के मन में यह प्रश्न अवश्य उठा कि क्या केवल गियानचन के 'सारा' के पास पूजा नहीं हुई, या ऐसे और लोगों के साथ भी यही होता आया है?

अपने मन को दृढ़ कर विचारचन बोले-

"समाज में जो चलन है, उसी के अनुसार चलना अच्छा होगा। अपने यहाँ 'सारा' के पास पूजा करने की परम्परा कहाँ है, जो मैं पूजा कराने को कहता?"

विचारचन की बात सुनकर देवन के मन ने माना कि उनके विचार में तनिक भी दोष नहीं है। लेकिन यह भी नहीं कहा जा सकता कि कोई दोष है ही नहीं। जिस समाज में 'सारा' के पास पूजा करने का व्यवहार है, उस समाज की

दृष्टि में इसे दोष ही माना जाएगा। फिर देवन के मन ने कहा कि विचारचन चाहे जैसे हों, अपने सामने अभी तो बालबोध ही हैं। फिर भी कुछ टूट-नफा सहकर समाज का भार उठा रहे हैं, तो इसे समाज का सौभाग्य ही कहा जाएगा।

विचार को स्पष्ट करते हुए देवन बोले-

"बौआ विचार, अपने यहाँ, अर्थात अपने समाज में, न शव-संस्कार की केवल एक राह है और न दाह के बाद की क्रियाओं की।"

बोलते-बोलते देवन को लगा कि शायद विचारचन उनकी बात नहीं समझ पाए। कोई विचार समझ में आ जाए तो चेहरे की लालिमा कुछ और होती है और न समझ में आए तो चेहरे के रंग में अन्तर आ जाता है। विचारचन के चेहरे का रंग यही बता रहा था। फिर भी साहस बटोरकर विचारचन ने पूछा-

"कैसे, भाय साहब?"

देवन बोले-

"अपने समाज में शव-संस्कार के अनेक चलन हैं। जिनके पास सामर्थ्य है, वे चन्दन की लकड़ी से शव-दाह करते हैं। जिनकी सामर्थ्य उससे कम है, वे आम की लकड़ी से। जिनके पास उससे भी कम साधन हैं, वे घास-पात से दाह करते हैं और जिनके पास वह भी नहीं है, वे शव को मिट्टी के नीचे गाड़ देते हैं। इतना ही नहीं, बहती धारा वाले इलाके से अलग जहाँ ऐसी धारा नहीं है, वहाँ शव को मिट्टी में गाड़ने का चलन है और धारा वाले क्षेत्र में शव को धारा में प्रवाहित करने की परम्परा भी है।"

अब तक विचारचन लकड़ी से लेकर गोरहा-गोइठों तक से शव-दाह की बात जानते थे। अलग-अलग सम्प्रदायों में शव को गाड़ने की परम्परा भी उन्होंने देखी थी। देवन की बात सुनते ही उनका विचार अचानक आगे बढ़ा। वे बोले-

"भाय साहब, जो काम निपट गया, उसे छोड़िए। यदि भूत के पीछे पड़ेंगे तो वह भी घूमकर हमारे पीछे पड़ेगा। कल दसवाँ दिन है। आगे का काम, अर्थात सावित्री के पति के श्राद्ध के अगले कर्म पर विचार-विमर्श करना है। इसलिए मन में आया कि क्यों न हम दोनों भाई एक जगह बैठकर काम शुरू करने से पहले अपने विचारों की मुँह-मिलानी कर लें।"

विचारचन की सीधी बात सुनकर देवन के मन ने कहा, यही तो बुद्धिमानी है। लेकिन एक जगह बैठकर विचारों की मुँह-मिलानी तभी सार्थक होगी, जब विचार के मुँह से पूँछ और पूँछ से मुँह तक दोनों की समझ एक रंग की हो। नहीं तो यह सब जानते ही हैं कि अपनी-अपनी सीमा में कुत्ता भी बाघ होता है। समाज के लोग भी कैसी-कैसी धारणाओं के मेल से जीवन बिताते हैं, यह दिखाई देता ही है।

देवन का मन आगे की क्रियाओं के विचार के वन में विचरण करने लगा। एक मन कहता था कि अपना विचार विचारचन पर थोपना उचित नहीं, क्योंकि यदि कर्ता उस विचार के अनुकूल नहीं रहेगा तो उस क्रिया का सम्पादन ठीक से नहीं हो सकेगा। दूसरा मन कहता था कि इससे हजार गुना अच्छा होगा कि पहले विचारचन की बात सुनी जाए, फिर उसी के मन की धारणा को पकड़कर उसे उचित दिशा की ओर मोड़ा जाए।

विचारचन की प्रशंसा करते हुए देवन बोले-

“यही है बुद्धिविचड़ी, बौआ। हमेशा ध्यान रखिए कि जिस काम में हाथ डाल रहे हैं, उसे करने की अपनी सामर्थ्य कितनी है और बाहर से कितनी व्यवस्था करनी पड़ेगी। यदि काम का महत्त्व समझकर हाथी के महावत की तरह हाथ में अंकुश लेकर आगे बढ़ेंगे, तो काम अच्छा छोड़कर बुरा क्यों होगा?”

विचारचन देवन को इतनी श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे कि उन्हें लगता था, देवन भाय सृजनशील व्यक्ति हैं। कभी एक-दो घंटे उनके साथ बैठकर परिवार से समाज तक के विषयों पर मंथन किया जाए, लेकिन ऐसा अवसर बन ही नहीं पाता। अपने गाँव-समाज में भी जिन लोगों को सृजनशील और समझदार माना जाता है, उनके पास बैठकर उनके जीवन से सीखने की परम्परा धीरे-धीरे कम होती जा रही है। दोनों का अपना-अपना जीवन और अपने-अपने काम हैं, जो एक ओर साधक हैं तो दूसरी ओर बाधक भी।

देवन ने पूछा-

“तो बताइए बौआ, किस काम के लिए मुँह-मिलानी करना चाहते हैं?”

देवन की बात विचारचन ठीक से नहीं समझ सके, लेकिन अगले दिन

का जो काम उनके मन में था, अर्थात गियानचन के श्राद्ध-कर्म पर विचार करना, वह शीत से बची मिट्टी में अंकुरित बीज की तरह भीतर चमकता रहा। वे बोले-

"मित्र गियानचन का कल नह-केश है, इसलिए...।"

'नह-केश' कहकर विचारचन चुप हो गए। उनके सामने केवल सावित्री के अगले काम का प्रश्न था, लेकिन देवन के सामने समाज में प्रचलित मृत्यु-संस्कार की पूरी प्रक्रिया उपस्थित हो गई।

देवन बोले-

"बौआ विचार, अपने समाज में जिस तरह शव-संस्कार का केवल एक ही रास्ता नहीं, अनेक रास्ते हैं, उसी तरह आगे के श्राद्ध-कर्म का भी एक ही रास्ता नहीं है। यही तो अपने बाप-दादाओं से मिला जीवन-दर्शन है।"

गियानचन के विशेष क्रिया-कर्म की कोई स्पष्ट चर्चा न सुनकर विचारचन ने पूछा-

"कैसे, भाय साहब?"

जैसे बड़े भाई के रूप में किसी छोटे को काम करने की समझ देते हुए एक-एक कदम का रास्ता बताया जाता है और आगे बढ़ने के लिए उसकी पीठ थपथपाई जाती है, वैसे ही विचारचन की पीठ थपथपाते हुए देवन बोले-

"बौआ, कल नह-केश होगा। यह तेरह-दिवसीय श्राद्ध की प्रक्रिया हुई। लेकिन समाज में ऐसे लोग भी हैं जो अर्द्धमासी करते हैं, उनका नह-केश दसवें दिन से आगे होता है। उसी तरह जिनके यहाँ मासी होता है, उनका नह-केश उससे भी आगे होता है। समाज ने अपने सामूहिक रास्ते बनाए हुए हैं। मृत्यु भले किसी एक व्यक्ति की हो, लेकिन अग्निदाह में साथ जाने वाले बरियाती नह-केश कटाएँ तो भी बहुत बढ़िया और न कटाएँ तो भी बहुत बढ़िया। हाँ, समाज और परिवार-दियाद के व्यवहार में अन्तर अवश्य है।"

विचार समेटते हुए विचारचन बोले-

"भाय, 'हरि अनन्त, हरि कथा अनन्ता' है ही। हरि में एकरूपता रहती तो भी, और नहीं रहती तो भी अनन्तता बनी ही रहती। वाल्मीकि के राम विष्णु के

अवतार हैं, तुलसी के यहाँ वही परब्रह्म ईश्वर के अवतार बन जाते हैं और उससे हजारों कोस दूर कबीर के राम सोलहों आना निर्गुण-निराकार हो जाते हैं। यह भी नहीं कि केवल हम ही राम को जानते हैं। संसार के लोग भी जानते हैं। राम की तीन सौ मौलिक कथाएँ संसाररूपी समुद्र में तैरती-उतराती रही हैं।"

विचारचन के विचार को संसार की ओर बहता देखकर देवन ने शतरंज की गोटी की तरह सहारा देते हुए कहा-

"बौआ विचार, यही तो दुनिया है और यही उसका खेल-बेल। घर-घर के पुरुषों की कौन कहे, स्त्रियाँ भी समझती और कहती हैं कि जीवित में गुँहा-भात और मरने पर दूधा-भात।"

विचारचन का मन पहले ही बह निकला था, देवन ने उसे और दूर बहा दिया। उनकी स्थिति ऐसी हो गई जैसे कोई सूखी लकड़ियों का बोझ सिर पर लेकर पानी में उतर गया हो, न सिर से बोझ उतार पा रहा हो और न अपनी जान बचाने के लिए सहजता से तैर पा रहा हो। देवन भी मन ही मन विचारचन के विचार की गहराई नाप रहे थे।

अचानक विचारचन के मन में आया कि व्यर्थ ही समुद्र उलीचने में लगे हैं। दोस्तीनी का जो भार उठाया है, क्यों न उसी काम भर के लिए दोनों भाई अपने विचार मिला लें। कम से कम इतना तो होगा कि समाज किसी काम का विरोध करे भी तो दोनों भाइयों का विचार एक दिशा में रहेगा।

अपनी सीमा में लौटते ही विचारचन का मन कुछ सहमा। फिर सोचा, क्यों न मुख्य बात ही देवन भाय के सामने रख दूँ। वे बोले-

"भाय साहब, समझ ही रहे हैं कि कल मीत, अर्थात गियानचन की मृत्यु के दस दिन पूरे हो जाएँगे। कल से कौन-कौन से कर्म होंगे?"

दसवें से तेरहवें दिन तक, अर्थात नह-केश से द्वादशा और तेरहवें कर्म तक, बीच में अनेक कर्म हैं। कुछ नए कर्मों का जन्म होगा तो कुछ पुराने कर्मों का विसर्जन भी होगा। देवन के मन में आया कि विचारचन अभी कुछ हैं तो बच्चे ही हैं। यदि मैं अपने ढंग का विचार रख दूँ और वे आँख मूँदकर 'हाँ' कह दें, तो विचार-मंथन कहाँ होगा? और यदि विचार का मंथन ही नहीं होगा, तो जो मुँह-

मिलानी करेंगे वह कितने दिन जीवित रहेगी?

फिर देवन के मन में आया कि विचारचन इतने विश्वास के साथ आए हैं कि दोनों भाइयों की मुँह-मिलानी से समाज के सामने भी एक शक्ति पैदा होगी। देवन बोले-

"बौआ विचार, क्या पूरे देश का नक्शा-खतियान तैयार करना है कि अभी सब विचार लें और कल जाकर गियानचन की पत्नी से कह दें कि काम में हाथ लगा दीजिए? गियानचन भले चले गए, लेकिन उनकी पत्नी और बच्चे तो हैं ही। इसलिए अच्छा होगा कि हम दोनों भी रहें, वे भी रहें और तीनों एक जगह बैठकर अगले काम का रास्ता विचारकर तय करें।"

देवन की बात विचारचन को अच्छी लगी, फिर भी मन में बैठी मुँहपुरखी, अर्थात पुरुष-प्रधान धारणा बीच में आ गई। उन्हें लगा कि पुरुषों के बीच पहले विचार कर लेना अधिक उचित होगा, तभी अगले दिन बात ठीक से आगे बढ़ सकेगी। वे बोले-

"भाय साहब, यदि केवल पुरुषों का काम होता तो विचार और काम दोनों साथ-साथ करते चलते। लेकिन यहाँ पुरुष और स्त्री को मिलकर काम करना है। पुरुष-स्त्री के बीच यदि पहले से विचार न कर लिया जाए तो काम के बीच उलट-फेर होता ही रहेगा न?"

विचारचन के मन के विचार को दृढ़ करते हुए देवन बोले-

"क्या यह बही-खाते का काम है कि शून्य थोड़ा कम-बेसी हुआ तो लाख करोड़ हो जाएगा और करोड़ लाख? यहाँ तो जीवन की प्रक्रिया है। जैसे तिल-तिल बढ़ती है, वैसे ही तिल-तिल घटती भी है। फिर इसके लिए मन उदास करने की क्या आवश्यकता है?"

देवन की बात सुनकर विचारचन के मन में जैसे श्वास, अर्थात स्व-आस का प्रकाश जग उठा। ❑

सातवाँ पड़ाव

मन में चिन्ता भरी होने के कारण भोर के चार बजे ही विचारचन की नींद टूट गई। आँख खुलते ही लगा, भोर हो गई और मैं अब तक सोया हूँ। दोस्तीनी सावित्री रास्ता देख रही होगी। क्यों न पहले उसके यहाँ जाकर आज के कर्म की सारी बात कह दूँ। लेकिन कहूँगा क्या? यदि साँझ में देवन भाय के साथ विचार कर लिया होता, तभी कुछ स्पष्ट रहता। उन्होंने तो यही कहा था कि कर्ता के पास जाकर काम में हाथ भी लगाएँगे और विचार भी करते चलेंगे। इसलिए देवन भाय को साथ लेना भी आवश्यक है।

उसी समय चार बजे वाली रेलगाड़ी ने स्टेशन पर सीटी दी। विचारचन जानते थे कि वह गाड़ी पूरब की ओर जाती है। इससे उन्हें लगा कि शायद अभी भोर नहीं हुई है। बिस्तर से उठकर बाहर आए और आकाश की ओर देखा तो 'डंडी-तराजू' पूरब की ओर उगा दिखाई दिया। उन्हें यह नहीं मालूम था कि आकाश का यह डंडी-तराजू मौसम के अनुसार अलग-अलग समय पर उगता और डूबता है। किसी मौसम में साँझ को उगकर आधी रात तक डूब जाता है और किसी मौसम में आधी रात को उगकर भोर तक दिखाई देता है।

विचारचन के मन में दुविधा उठी। एक मन कहता, भोर हो गई है। दूसरा कहता, डंडी-तराजू अभी पूरब में उगा है, इसलिए शायद अभी साँझ ही है। फिर स्वयं को समझाया, साँझ कैसे हो सकती है? रात का खाना खा चुका हूँ, बिस्तर पर जाकर सो भी चुका हूँ। कहीं ऐसा तो नहीं कि मन भ्रमित हो गया है और पश्चिम को ही पूरब समझ रहा हूँ? लेकिन अभी इसका निर्णय कैसे करूँ? दिन होता तो सूर्य को देखकर पूरब-पश्चिम पहचान लेता। दिन में सूर्य भोर को पूरब में उगता और साँझ को पश्चिम में डूबता है। लेकिन रात तो रात है।

दिशा का ठिकाना न पाकर विचारचन ने आँखें मूँद लीं और मन को स्थिर

करते हुए सोचा कि दिन का पता सूर्य से चलता है और रात चन्द्रमा की है, इसलिए रात की स्थिति भी चन्द्रमा से ही समझी जा सकती है।

आँखें खोलकर विचार किया तो याद आया कि पूर्णिमा का चाँद पूरब में अपने पूर्ण, विशाल रूप में उगता है और भोर में पश्चिम की ओर उसी पूर्णता के साथ डूबता है। पूर्णिमा का ध्यान इसलिए आया कि कातिक पूर्णिमा को वे हर वर्ष गंगा-स्नान के लिए सिमरिया घाट जाते हैं। यहाँ यह नहीं समझना चाहिए कि देशप्रसिद्ध कवि रामधारी सिंह 'दिनकर' के सिमरिया की चर्चा हो रही है। फिर भी विचार वहाँ तक चला गया कि आज के सिमरिया की गति क्या है और दिनकरजी का सिमरिया कैसा था? जिस सिमरिया के दिनकरजी कलमधारी सिपाही थे, वही सिमरिया आज बन्दूकधारी गाँव कैसे बन गया? दोष गंगा-दियारे की मिट्टी में है या मिट्टी से बनी मनुष्य-मूर्ति में? आज भी लोग उसी दियारे की मिट्टी, जिसे गंगोट कहते हैं, लाकर माथे और बाँहों पर लगाते हैं तथा पितरों का उद्धार और स्मरण करते हैं।

सिमरिया घाट की गंगा में डुबकी लगाने की स्मृति आते ही विचारचन का विश्वास दृढ़ हुआ कि सूर्य की तरह चन्द्रमा भी पूरब में उगता और पश्चिम में डूबता है। दिशा निश्चित करके उन्होंने रात के चाँद को समझने का प्रयत्न किया। पश्चिम में हँसिए जैसा चाँद दिखाई दिया। उसे देखते ही मन और दिग्भ्रमित हो गया। पूर्णिमा के चाँद का लोहित रंग के विशाल गोले जैसा रूप स्मृति में था, लेकिन आज वह कहाँ है?

विचारचन को भूगोल का ज्ञान नहीं था कि चन्द्रमा कब उगेगा, कब डूबेगा और उसकी गति का क्रम क्या है। फिर भी इतना जानते थे कि पूर्णिमा के बाद चाँद पल-पल पतला होता जाता है और अमावस्या आते-आते सोलहों आना लुप्त हो जाता है। इसके विपरीत अमावस्या के बाद वह पल-पल बढ़ता जाता है और पूर्णिमा तक इतना भर जाता है कि लोहित विशाल गोले के रूप में अँधेरे को प्रकाश में बदल देता है।

विचारचन के मन में प्रश्न उठा, क्या मनुष्य का जीवन भी चन्द्रमा जैसा ही है? एक ओर कोई धन से भरा है और कोई धनविहीन। जिस तरह धनकुबेर की

बढ़ी हुई सम्पत्ति एक ओर घटती है तो दूसरी ओर बढ़ती है, उसी तरह मनुष्य के जीवन में भी एक ओर विषमता घटे तो दूसरी ओर समता जन्म ले सकती है।

अचानक विचारचन के मन में शान्ति की सिरखार-जैसी महीन रेखा उभरी। विचार आया कि बच्चा भी पानी के रूप से मिट्टी के रूप में, अर्थात तरल से ठोस रूप में बदलते-बदलते इतना ठोस और समर्थ हो जाता है कि अपनी एक दुनिया रच लेता है। जिस तरह सूर्य संसार को प्रकाशित करता है, उसी तरह मनुष्य की चेतन-शक्ति में भी प्रकाश फैलाने का गुण है। एक ओर अबोध-अज्ञानी बच्चा जागकर सुबोध-सज्ञान बनता है, दूसरी ओर चन्द्रमा, सूर्य और तारे आकाश को सजाते हैं तथा पहाड़ और समुद्र धरती को। लेकिन विचारचन की जागी हुई चेतना वहीं फिर ऐसे अटक गई, जैसे टूटी सड़क के गड्ढे में कोई गाड़ी अटक जाए।

उनके मन के अटकने का कारण यह था कि एक दुनिया आँखों के सामने है, मिट्टी-पानी और धरती-आकाश से सजी हुई; और दूसरी दुनिया मनुष्य के भीतर है, जो अपने विचारों से सजी है। तब दोनों में सत्य कौन है और असत्य कौन?

विचारचन इसी उलझन में थे कि पेड़ पर पौरुकी की जोड़ी बोल उठी। पौरुकी की आवाज सुनते ही उन्होंने मान लिया कि भोर हो गई है। भोर का बोध होते ही अनेक प्रश्न और अनेक काम ऐसे आ खड़े हुए, मानो दण्ड-बैठक करते हुए एक साथ सामने आ धमके हों। मन उलझ गया कि किस काम का कौन-सा सूत्र है, किसे पहले करें और किसे छोड़ें। सभी काम एक ही मूल्य के भी तो नहीं होते। कोई काम चवन्नी-अठन्नी जितना है तो कोई दसटकही-नमरी जितना महत्त्वपूर्ण। ऐसे में पहले क्या किया जाए?

विचारों का बोझ इतना बढ़ा कि जैसे मन पर अस्सी मन पानी पड़ गया हो और सारे विचार उसी में डूब गए हों। साँस डूबे हुए बुलबुले की तरह चलने लगी। तभी विचारचन ने स्वयं को टोका, व्यर्थ ही मन को भटका रहा हूँ।

आज के कामों को समेटकर बाँधने लगे तो सावित्री का ध्यान सामने आ गया। जैसे कृष्ण को उखल से बाँधते समय यशोदा की डोर सामने आ जाती है,

वैसे ही सावित्री की डोर उनके मन में आ लगी। सावित्री पर मन पहुँचते ही विचारचन को अपने पुरुषार्थ का बोध हुआ। मन ने कहा, इस संसार से उतना ही मतलब रखो जितना अपना दायित्व पूरा करने के लिए आवश्यक है। आज मित्र गियानचन का नह-केश है। दोस्तीनी से जो बात हार चुका हूँ, उसे पूरा करना ही अपने पुरुषार्थ की कसौटी है।

भोर भी हो गई है। बेचारी सावित्री का मन भी व्याकुल होगा और वह पति का स्मरण करते हुए आज के क्रिया-कर्म की ओर टकटकी लगाए बैठी होगी। अच्छा होगा कि दैनिक कर्म से निवृत्त होकर पहले देवन भाय के यहाँ जाऊँ और उन्हें साथ लेकर कर्मस्थल, अर्थात सावित्री के यहाँ पहुँचूँ। सीधी राह दिखाई देते ही विचारचन का मन सन्तुलित हो गया।

नित्यकर्म से निवृत्त होते हुए विचारचन ने सोचा कि चाय पी लेना अच्छा होगा। कम से कम शरीर में इतनी शक्ति तो आ जाएगी कि दोपहर बारह-दो बजे तक लगातार काम कर सकूँ। वैसे अभी तक उन्हें यह स्पष्ट नहीं था कि जिस काम में लगने जा रहे हैं, उसका नाप-जोख क्या है और अपनी कर्म-शक्ति का नाप-जोख कितना है। यदि चार घंटे का काम है तो पहले शरीर में इतनी ऊर्जा अवश्य जुटा लेनी चाहिए कि काम को ठीक से सम्पन्न करके अन्त तक पहुँच सकें।

चाय पीकर और पान खाकर विचारचन ने पूरब की ओर देखा। पौ फट रही थी और सूर्य की लालिमा निखरने लगी थी। तभी मन में आया कि यदि देवन भाय अभी नहीं उठे होंगे तो उन्हें उठाने और तैयार होने में समय लगेगा। दुविधा फिर सामने खड़ी हो गई। अकेले सावित्री के यहाँ चले जाएँ तो देवन भाय दोष देंगे कि जब दोनों ने साथ विचार किया था, तब मुझे छोड़कर अकेले क्यों चले गए। और देवन के यहाँ जाकर देर हो जाए तो दोस्तीनी कहेगी कि समय पर नहीं आए।

स्थिति साँप-छुछुंदर की हो गई थी, खाएँ तो मरें और पकड़कर छोड़ दें तो अन्धे हों।

विचारचन ने अन्ततः निश्चय किया कि पहले देवन भाय के यहाँ जाएँगे।

यदि उन्हें तैयार होने में अधिक देर लगेगी तो कह देंगे, आप तैयार होइए, तब तक मैं आगे जाकर दोस्तीनी को सूचना दे आता हूँ कि देवन भाय को साथ लेकर आ रहा हूँ। उपाय मिलते ही मन वैसे ही सहज हो गया, जैसे जीवन-योग मिलते ही जीवन की गाड़ी सरपट चाल पकड़ लेती है।

देवन अपने जीवन को अपने हाथ में रखकर, मुट्ठी बाँधकर चलने वाले व्यक्ति थे। इसलिए उनका अपना जीवनानुकूल समय था। नित्यकर्म से निवृत्त होकर चाय बनाकर कप हाथ में लिया ही था कि विचारचन पहुँच गए। उन्हें देखते ही देवन बोले-

“बौआ, हाथ में चाय ली ही है। एक ही कप चाय है, आओ दोनों भाई इसी में बाँटकर पी लें।”

विचारचन घर से चाय-पान करके ही निकले थे। पान की पीक तक अभी नहीं फेंकी थी। पीक फेंकते हुए बोले-

“भाय साहब, चाय-पान करके ही घर से निकला हूँ, इसलिए अब नहीं पीऊँगा। यह आपका भोर का आहार है, आप ही ग्रहण कीजिए।”

विचारचन की बात सुनकर देवन ने कुछ नहीं कहा। चाय पी, पान खाया और उनके साथ गियानचन के घर, अर्थात सावित्री के यहाँ चल पड़े।

तीन-चार मिनट का ही रास्ता था। सावित्री भी डेढ़ी पर बैठी विचारचन की राह देख रही थीं। सावित्री को देखते ही विचारचन बोले-

“हम लोग निर्धारित समय पर पहुँच गए।”

सावित्री बिना ‘हाँ-हूँ’ किए चुपचाप खड़ी रहीं। विचारचन के पहुँचने से पहले ही वे दरवाजा बुहारकर बिछावन बिछा चुकी थीं।

दरवाजे पर पहुँचते ही देवन बोले-

“भले हम तीन ही लोग हैं। तीन लोगों के बीच किसी विचार पर एकमत होने में अधिक देर नहीं लगती। इसलिए पहले एकमत होकर काम का सूत्र बना लें और फिर उसी के अनुसार काम को आगे बढ़ाते चलें।”

देवन की बात का समर्थन करते हुए विचारचन बोले-

"आपने दिव्य बात कही, भाय साहब। समाज में देखते ही हैं कि लोगों का कण्ठ दबा-दबाकर उन्हें नीचे धकेला जाता है। ऐसी स्थिति में यदि अपनी जान बचाते हुए मिल-जुलकर चल लें तो यह कोई बालबोध का खेल नहीं है। आप अनुभवी व्यक्ति हैं, इसलिए अनुभव के आधार पर अपना विचार दीजिए। जब दोस्तीनी ने अपना भार हम पर डाल दिया है तो हमारा भी दायित्व है कि इन्हें पार-घाट लगाएँ।"

विचारचन की बात जिस तरह देवन के मन में बैठी, उसी तरह सावित्री के मन में भी उतर गई। जैसे कोई अपनी बात लिखित या मौखिक आवेदन के रूप में रखता है, वैसे ही सावित्री ने निवेदन किया-

"मैं तो जीवन की धारा में डूबती नाव पर सवार हूँ। आप लोग जैसे भी हो, मुझे पार-घाट लगा दीजिए।"

सावित्री की बात सुनकर देवन के मन में आया कि कह दें, अपना पार-घाट अन्ततः मनुष्य को स्वयं ही लगाना पड़ता है। दूसरे लोग उसमें सहायक भी हो सकते हैं और विघ्न-बाधा उपस्थित करने वाले भी। लेकिन तुरन्त मन ने रोक दिया। देवन और सावित्री के बीच अभी तक सीधा विचार-विनिमय हुआ ही कहाँ था। बीच में विचारचन थे। इसलिए अच्छा होगा कि पहले विचारचन ही कुछ कहें।

बीच-बचाव करते हुए विचारचन बोले-

"दुनिया में जब सबका पार-घाट किसी न किसी रूप में लगता ही है, सफल हो या असफल, तब आपका पार-घाट क्यों नहीं लगेगा?"

'पार-घाट' सुनकर सावित्री के मन में सन्तोष की हल्की रेखा जगी, लेकिन पार कैसे लगेगा, यह अभी स्पष्ट नहीं हुआ।

देवन सोच रहे थे कि जब सावित्री अपने जीवन की राह का भार उनके सामने रख रही हैं, तब अपना जीवनानुभव पहले स्पष्ट कर देना उचित होगा। उसके बाद सावित्री स्वयं विचार करें कि उनके लिए कौन-सा रास्ता अनुकूल है। यदि वे देवन के विचार के अनुरूप रास्ता पकड़कर आगे बढ़ती हैं तो जहाँ तक सम्भव होगा, पीछे से उनका साथ देते रहेंगे। यदि वैसा नहीं करतीं तो वह उनका

अपना निर्णय होगा। अच्छा हो या बुरा, उसकी जवाबदेही भी उन्हीं की होगी। कम से कम कोई यह तो नहीं कह सकेगा कि अमुक व्यक्ति की बात मानकर काम किया, इसलिए डूब रहा हूँ या डूब गया। यहाँ पहुँचते-पहुँचते देवन का मन निश्चल-सा हो गया।

इसी बीच सावित्री बोलीं-

"पार-घाट कैसे लगेगा, यह आप दोनों ही सोच-विचारकर बताइए। आप दोनों जो विचार देंगे, उसे आँख मूँदकर मानने के लिए मैं तैयार हूँ।"

सावित्री की स्पष्ट बात सुनकर देवन आशान्वित हुए, लेकिन सामने विचारचन को देखकर उनके मन में आया कि विचारचन का अपना विचार क्या है, यह वही कहें। इसलिए उन्होंने दृष्टि उठाकर विचारचन की ओर देखा।

विचारचन के मन में था कि जैसे पहाड़ से निकली नदी अपनी जड़ पहाड़ में रोपकर आगे बढ़ती है और अनेक प्रकार की धाराओं से मिलती-जुलती, अपना रूप बदलती हुई अन्ततः समुद्र में जा मिलती है, वैसे ही देवन भाय जीवनानुभव में उनसे बहुत आगे हैं। हम दोनों अभी नवतुरिया हैं, जीवन का अनुभव परिपक्व नहीं है, लेकिन देवन भाय वैसे नहीं हैं।

विचारचन के मन में देवन का एक और रूप उभरा। सैकड़ों बीघे की आम की गाछी के बीच यदि बेल का एक ही पेड़ हो, तो वह भी अपनी डाल-पत्तियों के साथ फूल और फल अवश्य देगा। उसे न कौआ रोक सकता है, न वनचर। देवन भाय भी उसी बेल के पेड़ जैसे हैं। वे साफ-साफ कहते आए हैं कि न उन्हें किसी पर मालिकाना चलाने का शौक है और न वे स्वयं किसी के मालिक हैं। जैसे भगवान सबके मालिक हैं, वैसे ही उनके भी मालिक भगवान ही हैं।

विचारचन बोले-

"भाय साहब, गियानचन मेरे साथी थे, जो अब आँखों से ओझल हो गए। सामने उनकी पत्नी सावित्री हैं। सावित्री नवतुरिया हैं और मैं भी नवतुरिया ही हूँ। जीवन के तीखे-मीठे स्वाद को हम दोनों ने अभी ठीक से कहाँ जाना है। लेकिन आप वैसे नहीं हैं। दोस्तीनी को आपके ऊपर अर्पित किया है कि इन्हें पार-घाट लगाइए।"

विचारचन की बात को सही दिशा में जाता देखकर देवन अपने जीवनानुभव को आगे रखते हुए बोले-

“विचारचन, आज गियानचन की मृत्यु का दसवाँ दिन है। तेरह-दिवसीय श्राद्ध-कर्म के हिसाब से आज नह-केश का कर्म शुरू होगा।”

देवन के मुँह से सीधे काम की बात सुनकर विचारचन बोले-

“इसी पर विचार करने के लिए आपको यहाँ लाया गया है।”

विचारचन का समर्थन सुनकर सावित्री के मन के पेड़ में धैर्य का फूल खिल उठा। मन प्रसन्न हुआ, लेकिन वे कुछ नहीं बोलीं।

विचारचन बोले-

“हाँ, यही तो होना है।”

जीवन के अनुभवी देवन के मन में एक साथ अनेक प्रश्न उठने लगे। सावित्री इस समय विपत्ति में फँसी हैं, इसलिए उन्हें उससे उबारना मानवीय दायित्व है। लेकिन उस दायित्व की पूर्ति का रास्ता भी सीधा नहीं है। समाज अनेक जातियों और सम्प्रदायों में बँटा हुआ है। यदि गाँव-गाँव अलग-अलग जाति-सम्प्रदाय रहते तो एक-दूसरे को पहचानना सहज होता, क्योंकि सब अपने-अपने विचार समाज की धरती पर रखकर मानव-कल्याण की दिशा में चलते। लेकिन ऐसा नहीं है।

एक ही गाँव-समाज में अनेक गाँव-समाज और अनेक जाति-सम्प्रदाय इस तरह समाए हुए हैं कि एक जाति की कौन कहे, एक ही परिवार में तीन-तीन, चार-चार सम्प्रदाय तक हैं, जो जीवनयात्रा के सगुन-असगुन की तीन-चार अलग विचारधाराओं में बह रहे हैं। एक सम्प्रदाय श्राद्ध-कर्म में नह-केश कटाने को सगुन मानता है तो दूसरा असगुन। इसलिए दसवें दिन, अर्थात नह-केश के दिन का व्यवहार भी बहुरंगी हो गया है।

नई पीढ़ी के युवकों में तीसरा ही विचार पनप रहा है। उन्हें मुँडा हुआ सिर, अर्थात केश कटाया हुआ सिर, असगुन जैसा लगता है। समाज में ऐसे सम्प्रदाय भी हैं, जिनके मानने वाले जीवन भर दाढ़ी-केश नहीं कटाते। अब बताइए, यदि

केश-दाढ़ी-नाखून काटने-न काटने की भावनाओं में ही उलझे रहेंगे तो चन्द्रमा ग्रह पर पहुँचकर बसेंगे कैसे? जो चन्द्रमा घर की पत्नी के मुख में समाया है, उसे भूलकर आकाश के चन्द्रमा तक पहुँचना कोई छोटी बात नहीं है।

विचारों की दुनिया में भटकते देवन की दृष्टि सामने बैठी सावित्री पर पड़ी। सावित्री के बगल में बैठे रघुनाथ का सिर देखते ही उनके विचार ने अचानक मोड़ लिया। वे बोले-

“बच्चे के सम्बन्ध में गियानचन कुछ कह गए थे?”

रघुनाथ का नाम सुनते ही विचारचन चौंककर बोले-

“बहुत सुन्दर विचार उठाया आपने, भाय साहब। आज ही पिता-पुत्र के बीच जीवन का हिसाब-बारी भी हो जाएगा कि किसके प्रति किसका क्या दायित्व था, कितना पूरा हुआ और कितना बाकी रह गया।”

विचारचन की बात सुनकर देवन के मन में आया कि आज के समय को पानी की तरह बहा देना उचित नहीं। मृत्यु के बाद के अनेक कर्मों का आरम्भ भी आज होगा और कुछ का विसर्जन भी। इसलिए क्यों न आज के प्रमुख कर्मों पर ही बात शुरू की जाए।

देवन बोले-

“विचारचन, आज कौन-कौन से काम हैं?”

विचारचन बोले-

“भाय साहब, आज ही घाट पर खोपड़ी भी बनेगी।”

यह नहीं कि विचारचन अपना पल्ला झाड़ने के लिए ऐसा कह रहे थे। उन्हें जितना मालूम था, उतना ही कह सके।

‘खोपड़ी’ का उल्लेख सुनकर देवन के मन में कई विचार उठे। लेकिन आज कामों की जो दौड़ थी, उसमें मूल काम छोड़कर दूसरी ओर समय लगाना काम को और दूर कर देता। फिर भी मन का वेग कहाँ रुकता है। उनके मन में आया कि जीवन के दो घाटों पर खोपड़ी बनाने का चलन है। यदि रहने के घर को भी खोपड़ी मान लें तो तीन घाट हो गए। एक घाट विवाह का अवसर है और कहीं-

कहीं उपनयन के अवसर पर भी खोपड़ी बनती है। दूसरा घाट मृत्यु के बाद पोखर का घाट है।

एक घाट वह है जहाँ जीवित जीवन के लिए परिवार रचा जाता है और दूसरा वह है जहाँ मृत्यु के बाद कल्पित रूप में जीवन गढ़कर घाट पर खोपड़ी बनाई जाती है।

कल्पित जीवन के इस विचित्र और विशाल रूप को देखते हुए देवन के विचार का वेग और बढ़ गया। वे बोले-

"अपना क्या विचार है?"

अब तक सावित्री मन ही मन रघुनाथ के विषय में ही सोच रही थीं। इसी बच्चे को विद्यालय में प्रवेश दिलाने को लेकर पति-पत्नी के बीच कहा-सुनी हुई थी। गियानचन कहते थे कि पाँच वर्ष पूरे होने के बाद रघुनाथ को विद्यालय में प्रवेश दिलाएँगे, जबकि सावित्री उसके कद-काठी और समझ को देखकर साढ़े चार वर्ष की आयु में ही विद्यालय भेजना चाहती थीं। उस मतभेद के बाद छह महीने का जो समय बीता, उसमें कोई कसर बाकी नहीं रही। अन्ततः पति भी संसार से चले गए।

रघुनाथ को पालने का पूरा भार अब सावित्री के ही ऊपर आ गया था। इस समय वे जीवन की दो सीमाओं के बीच खड़ी थीं। एक ओर पति की मृत्यु के बाद श्राद्ध-कर्म का नह-केश था और दूसरी ओर बेटे को विचारशील जीवन देने के लिए विद्यालय में प्रवेश दिलाना। पति-पत्नी के बीच छह महीने का जो मतभेद था, उसका समय भी अब पूरा हो चुका था।

फिर भी रघुनाथ का जीवन सावित्री के मन में गौण पड़ गया था, क्योंकि पति की मृत्यु के बाद क्रिया-कर्म की जो धारा बह रही थी, उसका वेग प्रबल हो गया था। कोई धारा तभी अधिक गतिशील रहती है, जब उसमें पानी चलायमान और प्रचुर हो। मौसम के अनुसार पानी सूखने या घटने लगे तो वही धारा धीरे-धीरे निष्क्रिय और निर्बल हो जाती है।

असमंजस में पड़ी सावित्री बोलीं-

"इन लोगों का जो आदेश मिलेगा, उसी के अनुसार मुझे भी चलना है।"

सावित्री की बात सुनकर देवन के मन में विचित्र द्वन्द्व उठ खड़ा हुआ। श्राद्ध-कर्म के विषय में सावित्री क्या जानती हैं, विचारचन क्या जानते हैं और स्वयं देवन क्या समझते हैं, इन तीनों को एक जगह सामंजस्य में लाए बिना विचारों की मुँह-मिलानी कैसे होगी? और यदि विचारों की मुँह-मिलानी ही नहीं होगी तो वह विचार कितने दिन चलेगा?

अपने मन का विचार दबाते हुए देवन बोले-

"विचारचन, दोस्तीनी का विचार तो सुन ही लिया। अब तुम ही कोई रास्ता बनाओ।"

देवन की बात सुनकर विचारचन के मन में उड़ी-बिड़ी मच गई। एक ओर दोस्तीनी का भार उन्होंने अपने ऊपर ले रखा था और दूसरी ओर देवन की बात से समाज का भार भी कन्धे पर आता दिखाई दे रहा था। संयोग से उनका विचार कुछ आगे बढ़ा। जैसे किसी आम या दूसरे फल के पेड़ पर चढ़ जाने के बाद जितने फल दिखाई देते हैं, उतने धरती पर खड़े होकर नहीं दिखाई देते, वैसे ही परिस्थिति के भीतर उतरते हुए विचारचन को भी कई बातें दिखाई देने लगीं।

वे बोले-

"भाय साहब, आपके नापे-तौले विचार के सामने मेरे विचार का क्या महत्त्व होगा?"

देवन के मन में एक क्षण के लिए आया कि विचारचन अपना पल्ला झाड़कर निकलना चाहते हैं। लेकिन अगले ही क्षण मन ने गवाही दी कि पल्ला वही झाड़ सकता है, जो काम से जुड़ा न हो। जो स्वयं काम के बीच खड़ा है, वह पल्ला झाड़कर निकल कैसे सकता है?

देवन के मन में समाज का रूप उभरा। उन्हें लगा, समाज ऐसा हो गया है जिसकी लाढ़ि-पुरैन, अर्थात जड़-पत्तियाँ, सूखती जा रही हैं। वहाँ स्वस्थ बच्चा कैसे जन्म लेगा? भीतर ही भीतर उनका मन इतना उफनने लगा कि इच्छा हुई, वे भी उस तित्तिरि की तरह अपना विचार उगल दें, जिससे तैत्तिरीय उपनिषद् गढ़ा गया।

लेकिन अगले ही क्षण मन ने रोक दिया। अब तक जो सामाजिक धारा

बहती आई है, उसे न तो तोड़ना आसान है और न उसे उसी रूप में सँजोए रखना उचित है। हम इक्कीसवीं सदी में जी रहे हैं। यदि आज भी श्राद्ध-कर्म को स्वर्ग-नर्क पहुँचाने का साधन ही समझेंगे तो फिर दूसरे ग्रहों पर भ्रमण करने वाले यन्त्रों का निर्माण क्यों कर रहे हैं? वर्ष-दर-वर्ष मातृनवमी और पितृपक्ष का भोज होता है, बरखी का भोज और श्राद्ध का भोज भी होता है, पूजा-पाठ भी होता है। पोखर के घाट से गाय-बैल के घर तक, अर्थात माल-जाल के घर तक, अनेक प्रकार के कर्म-पूजन होते रहते हैं। श्राद्ध-कर्म, तेरहा, अर्द्धमासी और मासी कर्म के भी अनेक प्रकार के विधान हैं।

मन ही मन जितना विचार करते गए, देवन का मन कभी प्रीत से बेप्रीत, अर्थात विपरीत दिशा में दौड़ता और कभी बेप्रीत से फिर प्रीत की ओर लौटता। अन्ततः कुछ उत्तेजित होकर वे सावित्री से बोले-

"कनियाँ, आपके मन को जो उचित लगे, उसे मैं भी मानूँगा और आपके पीछे खड़ा रहने के लिए तैयार हूँ। यही न?"

सावित्री मुस्कराती हुई बोलीं-

"यही न, और क्या!"

अपनी विवशता दिखाते हुए विचारचन बोले-

"लोगों ने क्या मुझे कोई गंजन देना बाकी छोड़ा है? लेकिन करें भी तो क्या।" ❑

आठमा पड़ाव

गियानचन की मृत्यु को आज पहला महीना लग गया था। आज ही अमावस्या के दिन गियानचन की मृत्यु हुई थी। सावित्री अभी बिछावन से उठी भी नहीं थीं कि बौकी दादी आकर बोलीं-

“कनियाँ, गियानचन-बच्चा की पहली छाया आज ही होगी।”

बौकी दादी अपनी ओर से बोलती जा रही थीं, लेकिन सावित्री ‘हाँ-हूँ’ कुछ नहीं कह रही थीं। बौकी दादी बोलने वाली स्त्री थीं। कोई उनसे पूछे या न पूछे, अपने मन से कुछ न कुछ जोड़कर कहती ही रहती थीं। उनके कुछ विचार जीवनोपयोगी भी होते थे, लेकिन वे गेनहारी या पटुआ के साग की तरह एकरंगे और आसानी से पहचाने जाने वाले नहीं, सतरंगे साग की तरह मिले-जुले होते थे। यहाँ पटुआ के साग से आशय बैसाख के पटुआ से है, जिसे कुजरबा पटुआ भी कहा जाता है। ऐसे सतरंगे साग में क्या अच्छा है और क्या बुरा, इसे अलग करना कठिन हो जाता है। बौकी दादी के विचारों को भी लोग कुछ इसी तरह लेते थे। अपनी बात समाप्त करके वे जिस तरह अपने मन से सावित्री के पास आई थीं, उसी तरह अपने मन से लौट भी गईं।

बिछावन पर पड़ी सावित्री मन ही मन सोचने लगीं कि जब आवश्यकता के समय देवन भैया और विचारचन दोनों उनके साथ खड़े हुए हैं, तब उनसे राय-विचार किए बिना कुछ करना अपने लिए उचित नहीं होगा। जिस दिन अपने जीवन का होश सँभाल लूँगी, उस दिन भले जो उचित लगे करूँगी, लेकिन अभी उनसे पूछे बिना कुछ नहीं करूँगी।

फिर भी बौकी दादी की बात का धक्का सावित्री के मन में लग चुका था। मन में आया कि यदि अभी देवन भैया से पूछ लेती तो दिन भर मन में चैन रहता। जैसे क्षण-क्षण और पल-पल से मिनट, घण्टा और दिन-रात बनते हैं, उसी तरह

क्षण-क्षण का चैन जीवन का चैन बनाता है।

फिर मन ने कहा कि अभी बिछावन से उठने का समय है। सबके अपने-अपने भोर के काम हैं। इतनी छोटी-सी बात के लिए व्यर्थ ही देवन भैया के काम में बाधा डालना उचित नहीं होगा। अपने भी नित्यकर्म हैं। उनसे निवृत्त होकर देवन भैया के यहाँ जाऊँगी और सब कुछ पूछ लूँगी।

सावित्री के मन में यह प्रश्न भी उठा कि श्राद्ध-कर्म हुए आज सत्रह दिन हो गए, फिर यह कौन-सा नया कर्म सामने आ गया, जिसकी बात बौकी दादी कह गईं? सावित्री कहाँ जानती थीं कि यही 'छाया' आगे ऐसा रूप ग्रहण करेगी कि जीवन्त जीवन से आगे मृत जीवन की कल्पना खड़ी हो जाएगी और स्थिति ऐसी हो जाएगी कि जीवन्त मृत-सा तथा मृत जीवन्त-सा दिखाई देने लगेगा।

नित्यकर्म सँभालकर सावित्री देवन के यहाँ चल पड़ीं। रास्ते में विचारचन का घर भी पड़ता था, इसलिए उनसे मिल लेना उचित समझा। विचारचन दरवाजे पर ही थे। सावित्री को देखते ही बोले-

"दोस्तीनी, भोर-भोर किधर की यात्रा है?"

गियानचन के जीवित रहते सावित्री विचारचन से लाज-संकोच करती थीं। अब उनमें कुछ निधोखपन, अर्थात निःसंकोच भाव, आ गया था। मुँह पर साड़ी का आँचल डाले बिना ही बोलीं-

"दोस, बौकी दादी भोर-भोर एक समाद दे गई हैं। उसी को समझने-विचारने देवन भैया के यहाँ जा रही हूँ। आप भी चलिए।"

विचारचन बिना 'हाँ-हूँ' किए सावित्री के साथ हो लिए।

देवन चाय-पान करके अपने खेत की ओर जाने ही वाले थे कि विचारचन और सावित्री को देखकर दरवाजे की चौकी पर बैठ गए। दोनों के ओसारे पर चढ़ते ही हाथ के संकेत से उन्हें भी चौकी पर बैठने को कहा।

रास्ते में विचारचन ने सावित्री से दोबारा कुछ नहीं पूछा था। उन्होंने सोचा था कि जब देवन भाय के सामने विचार की काट-छाँट होनी ही है, तब सब सुन ही लेंगे। व्यर्थ ही दोबारा क्यों पूछें? ऐसा भी हो सकता है कि दोनों के विचार में

कुछ अन्तर निकल आए। तब यदि बाद में अपना विचार बदलना पड़े तो संस्कार को चोट लगेगी और संस्कार को चोट लगते ही मन में कर्कशता जन्म ले सकती है। व्यर्थ ही उस कर्कशता को पनपने देना उचित नहीं। इससे अच्छा है कि तीनों मिलकर विचार के सभी पक्षों पर विचार करें। जितना विचार-मंथन होगा, बात उतनी ही स्पष्ट होकर सामने आएगी।

विचारचन और सावित्री के चौकी पर बैठते ही देवन बोले-

“बौआ विचार, अभी चाय पीकर और पान खाकर खेत की ओर जाने ही वाला था कि तुम दोनों को देखकर रुक गया। भोर का समय है, पहले चाय पी लो। उसके बाद बातचीत होगी।”

देवन का चाय का आग्रह सुनकर विचारचन के मन में पहले आया कि कह दें, चाय पी चुके हैं। लेकिन अपने मन ने रोक दिया कि दो लोगों में केवल अपना पेट भर जाने से भार थोड़े ही हल्का हो गया है। यदि किसी कारण सावित्री ने चाय न पी हो और मेरे कहने से उनके लिए भी चाय रुक जाए, तो बीच में उनका हत्यारा बनना उचित होगा क्या? इसलिए विचारचन ने चुप रहना ही अच्छा समझा।

सावित्री में निधोखपन जाग तो रहा था, लेकिन अभी सोलहों आना नहीं जागा था। इसलिए व्यवहार में कहीं-कहीं संकोच की बाधा बनी हुई थी और वे भी कुछ नहीं बोलीं।

दोनों को चुप देखकर देवन के मन में आया कि शायद कोई विशेष बात हुई है, जिससे दोनों मर्माहत होकर बिना चाय-पानी किए ही चले आए हैं। अच्छा होगा कि पहले गिलास भर-भर पानी और गिलास-गिलास चाय पिलाकर मन शान्त किया जाए। उसके बाद बातचीत होगी।

दोबारा चाय का आग्रह किए बिना देवन ने पत्नी से ऊँची आवाज में कहा-

“लोटे में पानी और गिलास दे जाओ। जब तक पानी पिएँगे, तब तक चाय भी बन जाएगी।”

सावित्री ने विचारचन की ओर देखकर कहा-

"भैया, चाय पीकर आई हूँ।"

सावित्री की बात सुनकर विचारचन के मन में आया कि पहले ही क्यों नहीं कह दिया कि चाय पीकर आई हैं। लेकिन अब भी कौन-सी देर हुई थी कि दोबारा कहने का समय बीत गया हो। विचारचन बोले-

"भाय साहब, आप पुराने विचार के आदमी हैं। अपने यहाँ का व्यवहार रहा है कि सोकर उठें, नित्यकर्म से निवृत्त हों और उसके बाद चाय पिएँ। लेकिन अब समय इतना आगे बढ़ गया है कि बिना चाय पिए बिछावन से उठना भी भारी हो गया है। मैं भी वैसा ही बन गया हूँ। भोर का आहार मुँह में लेने के बाद ही दरवाजे से कहीं आगे बढ़ता हूँ। चाय पीकर आया हूँ, दोबारा नहीं पीऊँगा। गैस की शिकायत भी बढ़ती जा रही है।"

विचारचन की बात को बिना काटे देवन ने पूछा-

"भोर-भोर तुम दोनों को एक साथ देख रहा हूँ। कोई विशेष बात है, विचारचन?"

अपना नाम सुनते ही विचारचन चौंक गए। कारण यह था कि अभी तो वे पमरिया की पलंगाई की तरह बीच में अटके हुए थे। समस्या सावित्री की थी, लेकिन न सावित्री ने मुँह खोलकर कुछ कहा था और न उन्होंने रास्ते में दोबारा पूछा था। ऐसे में अपनी ओर से क्या कहें? लेकिन चुप रहना भी उचित नहीं था। यदि सावित्री की ओर ध्यान ही न दें तो उनके मन में यह शंका जाग सकती थी कि बौकी दादी का समाद बताया और विचारचन ने कान ही नहीं दिया।

सावित्री को प्रोत्साहित करते हुए विचारचन बोले-

"इतने दिनों तक आपको दूसरे घर की समझता था, लेकिन अब वैसा नहीं है। अब हम अपने को भाई-बहन की तरह मानकर आगे के जीवन की राह साथ मिलकर पकड़ें। इसलिए हृदय खोलकर भाय साहब को सारी बात कहिए।"

स्त्री और पुरुष के बीच सम्बन्ध के दो रूप होते हैं। एक शारीरिक और दूसरा मानसिक। जब दोनों के बीच मानसिक सम्बन्ध बनता है, तभी मनुष्य-जीवन का कमल खिलता है।

अब तक सावित्री के मन का जो विराट रूप भीतर छिपा था, वह जैसे एकाएक जाग उठा। वे बोलीं-

"भैया, जब इनके सामने अपना जीवन सौंप ही दिया है, तब जैसे रखें, वैसे रहूँगी।"

सावित्री की बात सुनकर देवन का मन एकाएक चौंक उठा। भीतर से आवाज आई कि अपना भार अपने बूते सँभलता नहीं और दुनिया का भार उठाने वाले भरिया बन रहे हो! लेकिन अगले ही क्षण उनका मन सावन की घनघोर घटा की तरह भर आया और भीतर सावन की बूँदों जैसी झिर-झिर करुणा बरसने लगी।

धरती पर मनुष्य से अधिक समर्थ सृजन-शक्ति और कौन है? यदि मनुष्य स्वयं को ही निर्बल बना ले तो उसकी प्रबल शक्ति का क्या होगा? मनुष्य की शक्ति ऐसी है कि वह अपना बेड़ा पार करते हुए दूसरे का बेड़ा भी पार लगा सकता है। वही शक्ति है समय को परखना और वर्तमान के साथ रहते हुए भविष्य की ओर कदम बढ़ाना।

मुस्कराते हुए देवन ने सावित्री से कहा-

"अब तक सामाजिक सम्बन्ध के कारण आपको दूसरे रूप में देखता था, लेकिन गियानचन के परोक्ष हो जाने, अर्थात संसार से चले जाने के बाद विचार की भूमि बदल गई है। आपने जो कहा कि 'अपना जीवन सौंप दिया है', उस बात ने मेरे मन में हिलकोर उठा दी है।"

देवन के मुँह से 'हिलकोर' की बात सुनकर विचारचन का मन भी हिलकोर लेने लगा। वे बोले-

"भाय साहब, समाज भी समाज ही है। चार पैर वाले जानवर की तरह उसका मुँह कब आगे रहता है और कब पीछे हो जाता है, समझ में ही नहीं आता।"

विचारचन अपनी समझ से सामाजिक जीवन की बात कह रहे थे, लेकिन सावित्री को लगा कि विचारचन उन्हें ही लक्ष्य करके बोल रहे हैं। फिर उनके अपने मन ने रोका कि क्यों न विचारचन से ही अपने मन का संशय खोलकर

ठीक से समझ लिया जाए। सावित्री बोलीं-

“वह कैसे, दोस?”

देवन के मन में आया कि यदि व्यर्थ ही दूसरी दिशा में बातचीत बढ़ गई तो सामने के काम की बात पीछे पड़ जाएगी। और जब काम की बात पीछे पड़ेगी, तब झूठ-फूस की बातें आगे बढ़ती जाएँगी। इससे बातचीत की दुनिया में भटक जाएँगे और समय के साथ अपना जीवन भी व्यर्थ में उलझता जाएगा। इसलिए अच्छा होगा कि विचारचन और सावित्री के बीच समझने में जो गाँठ पड़ने से विचारों में मोड़ आ रहा है, उसे सुलझा दिया जाए।

लेकिन अगले ही क्षण देवन के मन ने कहा कि अच्छा होगा, पहले विचारचन स्वयं ही अपनी बात स्पष्ट करें। इसलिए देवन चुप रहे।

सावित्री का प्रश्न सुनते ही विचारचन उत्तर देने को व्याकुल हुए, लेकिन आँखें उठाकर देवन की ओर देखा तो लगा कि वे मन ही मन कुछ सोच रहे हैं। इसलिए विचारचन ने सोचा, पहले उनका विचार सुन लें, फिर अपनी बात सावित्री से कहेंगे। लेकिन ऐसा नहीं हुआ। देवन अपने मन के विचार को मन में ही घोंटकर पी गए। विचारचन ने सावित्री की ओर मुँह करके बोलना चाहा, लेकिन अपने ही मन ने रोक दिया कि अच्छा होगा, देवन भाय की ओर मुँह करके बात कही जाए। विचारचन बोले-

“भाय साहब, आप मानें या न मानें, लेकिन दुनिया के लोगों के मुँह से सुनता आया हूँ कि जिस तरह बच्चे की सेवा धर्म है, उसी तरह विधवा-सेवा भी धर्म है। गाँधीजी ने भी विधवा-आश्रम बनवाया था, जिसके माध्यम से उन्होंने विधवा-सेवा का धर्म निभाया। लेकिन विधवा का मुँह देखकर जब कहीं यात्रा के लिए निकलते हैं, तभी से मन में हन-हन, पट-पट होने लगता है कि विधवा का मुँह देखकर निकले हैं, अब अपशकुन होगा।”

विचारों में भटकते विचारचन की बात को देवन ने गम्भीरता से लिया, लेकिन उस गम्भीरता को अधिक गहराई में न ले जाकर ऊपर ही रखते हुए बोले-

“विचारचन, अभी जो समस्या सामने है, पहले उसी पर विचार करना अधिक उचित होगा। व्यर्थ में समाज का प्रश्न उठाकर अपने सामने के विचार को

दबा देना भी ठीक नहीं।”

सावित्री की ओर संकेत करते हुए विचारचन बोले-

“भाय साहब, गियानचन बचपन से मेरे साथी थे। आप भी सब देखते आए हैं। अब वे मर गए। शरीर तो रोग-व्याधियों का घर है और उसी के कारण मित्र गियानचन भी चले गए। दोस्तीनी दो बच्चों के साथ हैं, इसलिए इन्हें पौरुषबल तो चाहिए ही न?”

विचारचन की बात सुनकर देवन के मन में आया कि जैसे विचारचन अनुभव में अभी बच्चे हैं, वैसे ही सावित्री भी हैं। इसलिए अभी यह विचार देना समयानुकूल नहीं होगा कि पौरुषबल कहीं बाहर नहीं है, वह अपने ही मन में है और लिंगभेद केवल ऊपरी बात है। लेकिन अगले ही क्षण देवन के मन ने कहा कि क्यों न सावित्री अपने मुँह से जो कहें, उसी के अनुसार उन्हें रास्ता दिखाया जाए। देखना केवल इतना है कि वह जीवन के लिए अनुकूल है या प्रतिकूल।

देवन बोले-

“अब तक आपको जिस रूप और सम्बन्ध में समझता था, वह अलग था। लेकिन जब से आपने अपना जीवन सौंपने की बात कही है, तब से आपको बेटी के समान समझने लगा हूँ। परिवार में बेटी जिस तरह माता-पिता पर पूर्ण आश्रित रहती है, माता-पिता भी उसकी सेवा उसी तरह करते हैं, जैसे भक्त और भगवान के बीच अभक्त सम्बन्ध बना रहता है।”

देवन की बात सुनकर विचारचन और सावित्री दोनों का मन पसीज गया। उनके चेहरे का रंग धीरे-धीरे बदलने लगा। सावित्री को लगा जैसे कोई अमूल्य वस्तु मिल गई हो और विचारचन के मन में भी वैसा ही भाव उठा। ऐसा होना स्वाभाविक था। अब तक सावित्री अपने परिवार के भीतर सिमटी थीं और विचारचन भी अपने परिवार तक सीमित थे। लेकिन आज दोनों परिवार से आगे बढ़कर, परिवार से ऊपर उठकर, अपने को सामाजिक रूप में देखने लगे।

समाज भी समुद्र ही है। उसमें घोंघा-सीपी से लेकर शंख-महाशंख तक और विष से लेकर महा अमृत तक सबका वास है। उन्हीं के हिस्से लेकर उसका मंथन होता है। यह कोई एक ही बार हुआ हो और अब कभी नहीं होगा, ऐसी बात

भी नहीं है। अनेक बार हुआ है और जब तक जीवन के बीच 'दूजा-भाव' रहेगा, तब तक होता भी रहेगा।

विचारचन बोले-

"भाय साहब, समुद्र-मंथन की बात जाने दीजिए। जानने जाएँगे तो कहाँ तक जाएँगे। व्यर्थ ही दूसरे बादल के तारे गिनने लगेंगे तो अपने तारे थोड़े ही गिने जाएँगे। वे तो अपना बादल बनने पर ही गिने जाएँगे।"

विचारचन की बात सुनकर देवन के मन में आया कि जिसे वे अब तक बालबोध समझते रहे हैं, वह बालबोध से आगे बढ़कर सचेष्ट-बोध की ओर जा रहा है। इसलिए अच्छा होगा कि जैसे किसी देश का शासन एक स्थान पर केन्द्रित होकर जन-जन तक संचालित होता है और जन-जन का जीवन भी केन्द्रित होकर उस व्यवस्था में अपनी भूमिका निभाने का अधिकार रखता है, वैसे ही यहाँ भी सबके विचार को स्थान दिया जाए।

देवन बोले-

"विचारचन, हम तीनों तीन परिवारों से आकर एक जगह, अर्थात एक विचारधारा में बहना चाहते हैं। इसलिए किसी धारा में उतरने से पहले अपनी धारा तो बना लें।"

देवन की बात विचारचन ने जितनी अधूरी-अधूरी समझी, लगभग उतनी ही सावित्री ने भी। लेकिन जहाँ तीन व्यक्ति बैठकर बातचीत कर रहे हों, वहाँ तीनों विचार-विमर्श करते चलें, तभी एक धारा बनेगी और सबके विचार मिलते-मिलते आगे एक प्रवाह का रूप लेंगे। इसके लिए सबका मुँह खुलना आवश्यक है। राजनीति के क्षेत्र में भी दिखाई देता है कि राजनीतिक दलों की विचारधारा ही कहीं खो गई है। कौन क्या करना चाहता है, इसका ठिकाना नहीं रह गया है।

सावित्री बोलीं-

"भैया, भोर-भोर मन में एक खटका लग गया, इसलिए इनसे पूछते हुए आपके पास चली आई। बौकी दादी भोर-भोर आँगन में कौए की तरह टाँय-टाँय करके कह गईं कि आज गियानचन का पहला छाया-दिन है।"

सावित्री की बात सुनकर देवन गम्भीर हो गए। उनके सामने समाज में सावित्री जैसे परिवारों की स्थिति नाच उठी। रंग-बिरंगे अन्धविश्वासों के बीच समाज चल रहा है और उस पर रंग-बिरंगे रंग-रोगन की परतें भी दिन-रात चढ़ती रहती हैं। ऐसे वातावरण में सावित्री जैसे परिवार को इक्कीसवीं सदी के परिवार की तरह खड़ा करना इतना आसान नहीं है।

ऊपर से वैचारिक दौड़ ऐसी घनी है कि सामने सीधे-सीधे दिखाई दे कि लंका में बड़ा-छोटा उनचास हाथ का है। तब अपने मन में यह उठना स्वाभाविक है कि अपनी लम्बाई-चौड़ाई तो साढ़े तीन हाथ के भीतर है, फिर उनचास हाथ वाले के समकक्ष कैसे खड़े होंगे? उनचास हाथ में से अपने साढ़े तीन हाथ घटा दें, तब भी अन्तर कितना बड़ा रह जाता है।

सावित्री की बात को आगे बढ़ाते हुए देवन बोले-

“विचारचन, दोस्त होने के नाते तुम्हें गियानचन के परिवार का ही आदमी मानता हूँ। इसलिए पहले तुम दोनों विचार करके एक ही पथ के पथिक बनो। जब एक ही पथ पर पैर रखकर कदम-कदम आगे बढ़ने लगोगे, तभी पथप्रदर्शक बनकर विचारधारा के आगे-आगे चल सकोगे।”

देवन की बात समझने में दोनों को डेढ़-बार हो गया। अर्थात कुछ शब्दों का अर्थ विचारचन ने कुछ समझा और सावित्री ने कुछ। इसलिए जितना सीधा-सपाट रास्ता दोनों को चाहिए था, उससे बात कुछ दूर चली गई। इससे दोनों के मन में जितनी स्पष्टता आनी चाहिए थी, उतनी नहीं आई और मन अकुलाने लगा।

छह महीने से झंझावात झेलता सावित्री का जीवन जैसे किसी मोड़ की माँग कर रहा था। समुद्र के किनारे खड़े व्यक्ति को जैसे चारों ओर पानी ही पानी दिखाई देता है, वैसे ही सावित्री को सामने पानी से उठी भाप की धुँध और अँधेरे में अँधेरा ही दिखाई देने लगा। फिर भी अपने जीवन को विचार और व्यवहार में बाँधते हुए वे बोलीं-

“भैया, अब तक इन्हें भाईचारे के अनुसार बड़े भाई के समान समझती आई हूँ, लेकिन इतना ही नहीं, पिता और गुरु के समान भी मानती हूँ। इसलिए मेरे जैसे भारी दायित्व से घिरे व्यक्ति के लिए क्या उपाय उचित होगा, वही रास्ता

दिखा दीजिए।"

सावित्री की बात सुनकर देवन का मन आँसुओं के वन में भटक गया। साठ वर्षों का साधा हुआ जीवन था, फिर भी प्रतिदिन ऐसी हवा-आँधी उठती थी कि सब कुछ धूल-गर्द से ढँक जाता था। ऐसी स्थिति में भले कोई दिवरलग्गू च्यवन ऋषि की तरह च्यवनप्राश जैसी जीवनवर्धक वस्तु का सृजन ही क्यों न कर ले, वर्तमान परिवेश के अनुकूल जीवन बना लेना किसी के लिए इतना आसान नहीं कि चुटकी बजाई और सब छू-मन्तर हो गया।

अपने को निर्विकार करते हुए देवन बोले-

"न जीवन केवल एक काम का नाम है और न जीवन का सारा काम एक ही दिन में होता है। इसलिए अभी जिस काम से आई हो, पहले वही बताओ।"

बौकी दादी की बात को आगे रखते हुए सावित्री बोलीं-

"बौकी दादी भोर-भोर कह गईं कि आज ही रघुनाथ के पिता का पहला छाया-दिन है।"

बेबाक होते हुए देवन बोले-

"आपका मन जिसे उचित माने, वही कीजिए। व्यक्तिगत रूप से गाँव के सभी लोग जानते हैं कि देवन का परिवार आज तीन पीढ़ियों से कबीर मत के अनुसार चलता आ रहा है। इसलिए समाज के बीच भले कोई परिवार अलग धारा में ही क्यों न चलता हो, कल्याण भी उसी से होगा जिसे वह अपने मन से उचित मानकर अपनाए। अभी पूरा दिन पड़ा है। जो मन माने, कीजिए। साँझ की चाय-जलपान का हकार मेरी ओर से रहा। तीनों मिलकर एकरस, एक मुँह होकर विचार करेंगे। आगे की बात फिर समझी जाएगी। जिस दिन जो होना होगा, होगा। क्यों विचारचन?"

सीधे स्वभाव के विचारचन बोले-

"पहले जो साँझ का समय तय है, वही रहने दीजिए, भाय साहब।" ❑

नौवाँ पड़ाव

वापसी के रास्ते में सावित्री और विचारचन बातचीत करते आगे बढ़ रहे थे। सावित्री बोलीं-

“दोस, बौकी दादी जो कह गई हैं, उसका क्या करें?”

देवन के सम्पर्क में आने के बाद जिस तरह सावित्री का सोया हुआ मन जागने लगा था, उसी तरह विचारचन की चेतन-शक्ति भी जागने लगी थी। इससे किसी समस्या को हल करने की उनकी दृष्टि भी बदल गई थी। विचारचन बोले-

“क्या करना है और क्या नहीं करना है, यह अपने परिवार में हम स्वयं तय करेंगे या किसी के कहने पर करेंगे? यदि अपने परिवार को इतनी भी स्वतन्त्रता नहीं दे सके तो क्या गाँव को घिनाने के लिए जन्म लिया है?”

विचारचन की बात सुनकर सावित्री को छह महीने पहले पति के साथ रघुनाथ को विद्यालय में प्रवेश दिलाने का संकल्प याद आया। परिवार का एक अंग वैसे ही टूटकर गिर गया था, जैसे किसी घर का एक कोना टूटकर गिर जाए। लेकिन क्या एक कोना टूट जाने पर लोग उस घर में रहना ही छोड़ देते हैं?

पति के साथ किए गए संकल्प पर सावित्री फिर विचार करने लगीं। मैं जो भी हूँ, रघुनाथ की माँ तो हूँ ही। रघुनाथ बपटुग्गर, अर्थात पिता-विहीन हो गया, लेकिन बेटा-बेटी तो माता-पिता की संयुक्त सीमा और संयुक्त दायित्व में रहते हैं। आधा दायित्व अब तक निभाती आ रही थी, अब दूसरा आधा भी सिर पर आ गया है, जिसे निभाए बिना पार नहीं पा सकती।

महीने भर बाद कल ही मन को कुछ चैन मिला था कि आज भोर में बौकी दादी बीच में एक नई बात रख गईं कि अमुक का पहला छाया-दिन है।

पिछले छह महीनों के जीवन ने सावित्री को जीवन का बहुत कुछ पाठ

पढ़ा दिया था। डॉक्टर हो या ओझा-गुनी, परिवार हो या देवालय, हर जगह अर्थ, अर्थात पैसे का खेल चलता है। सात महीने पहले, जब पति जीवित थे, तब जितनी सम्पत्ति थी और जिस पर परिवार खड़ा होकर चल रहा था, उसमें कितनी कमी आ गई है!

जैसे-जैसे सावित्री परिवार की ओर देखतीं, वैसे-वैसे नई-नई दरारें खुलती दिखाई देतीं और भीतर-ही-भीतर मन काँपता रहता कि इन दरारों को भरूँगी कैसे। दिन भर सावित्री अपने परिवार की इन्हीं उलझनों में डूबी रहीं।

दिन ढला और रात का आगमन होने लगा तो विचारचन आए और बोले-

"दोस्तीनी, अभी का ही समय देवन भाय ने दिया था न?"

अपनी विवशता बताते हुए सावित्री बोलीं-

"हाँ, समय तो यही दिया था, लेकिन...?"

अपनी बात मन में दबाकर वे 'लेकिन' कहकर चुप हो गईं। देवन के यहाँ निमन्त्रित अतिथि की तरह विचारचन का उत्साहित मन बिना अधिक सोचे बोल उठा-

"लेकिन-वेकिन कुछ नहीं। अभी चलना है।"

विचारचन का उत्साहित मन देखकर सावित्री बोलीं-

"लेकिन यही कि अब अँधेरा फैलने लगेगा। दोनों छोटे बच्चों को अकेले आँगन में कैसे छोड़ दूँ?"

गरम तवे पर पापड़ सेंकने में जितनी देर नहीं लगती, उससे भी जल्दी विचारचन बोले-

"दोनों बच्चों को साथ ले चलिए।"

ऐसा ही हुआ। विचारचन के साथ दोनों बच्चों को आगे किए सावित्री भी देवन के यहाँ पहुँचीं। अपने नियम के अनुसार देवन दरवाजे पर बैठे थे। कुछ दूर से ही विचारचन और सावित्री को देखकर बोले-

"विचारचन, तुम्हें देखकर मन बेहद खुश हुआ।"

'बेहद खुशी' का अर्थ विचारचन ठीक से नहीं समझ पाए। अब तक वे

खुशी और नाखुशी, यही दो बातें समझते थे। मन में पहले आया कि 'बेहद खुशी' का अर्थ खुशी की सीमा तक पहुँचना होगा। लेकिन अगले ही क्षण लगा कि 'बेहद' का अर्थ तो बिना हद, अर्थात जिसकी कोई सीमा न हो, यह भी है। फिर विचार उलझ गया कि जहाँ कोई हद ही नहीं होगी, वहाँ सीमा पार करने का प्रश्न कैसा?

बिना 'हाँ-हूँ' में अधिक विचार किए विचारचन बोले-

"वह कैसे, भाय साहब?"

देवन मानो सोच-विचारकर ही बोले-

"विचारचन, जिस दिन मनुष्य स्वयं को समय के साथ बाँध लेता है, उसी दिन उसकी दरिद्रता का आधा बेड़ा पार हो जाता है। बचा हुआ आधा बेड़ा पार करने के लिए ही जीवन-संघर्ष करना पड़ता है।"

दोनों की बातचीत को सावित्री चिकारी शैली की बात समझकर अपने मन को दबाए सब कुछ सुन रही थीं। इसी बीच देवन की पोती रेखा एक बरतन में चूड़े का भूजा और तीन छिपलियाँ लेकर दरवाजे पर पहुँची। तीनों के सामने रखकर भूजा बाँटने लगी। तीनों छिपलियों में भूजा बाँटने के बाद जो बचा, उसे रघुनाथ और उसकी बहन, दोनों के बीच रख दिया।

भूजा खाकर पानी पीने के बाद तीनों ने चाय पी। चाय पीते ही विचारचन बोले-

"भाय साहब, धीरे-धीरे अँधेरा फैलता जाएगा। इसलिए जिस काम के लिए बुलाया है, अब पहले उसी को सँभालिए।"

देवन बोले-

"विचारचन, हम दोनों पुरुष हैं, इसलिए समाज के बहुत-से ऐसे बन्धन हैं जिनसे हम मुक्त हैं। लेकिन सावित्री के साथ ऐसा नहीं है। इसलिए पहले उसी पर विचार करना जरूरी है।"

देवन ने जैसे सावित्री के मन की बात ही कह दी हो। अपने मन का विचार व्यक्त करते हुए सावित्री बोलीं-

"भैया, इन बातों का क्या करूँ? घर से जब कहीं निकलती हूँ तो मन में डर घुस जाता है कि इज्जत बचाकर घर लौट पाऊँगी या नहीं।"

देवन ने सावित्री के मन की बात समझ ली। उनके मन में इतना विश्वास अवश्य था कि जिस गाँव-समाज में आपसी विवाद नहीं होता, वहाँ किसी स्त्री पर होने वाले अपराध को सभी अपराध मानकर उसका विरोध करते हैं, जिससे बहुत-से अनुचित अत्याचार दबे रहते हैं। लेकिन जहाँ समाज के बीच आपसी झगड़ा-लड़ाई होती है, वहाँ दुश्मनी के कारण बड़े-बड़े अनुचित अपराध भी होते हैं। बँटे हुए समाज में कोई उसे बुरा कहता है तो कोई अच्छा, क्योंकि ऐसे अपराध को कोई कनाइर, अर्थात बदला चुकाना भी कहता है।

अपना गाँव अभी वैसा नहीं था। अब तक समाज की धारा जिस रूप में प्रवाहित होती आई थी, उसी के अनुकूल था। इसलिए स्त्रियों के प्रति अनुचित अत्याचार दिन-दहाड़े नहीं होते थे। चोरी-छिपे होते हों, वह अलग बात है।

चोरी-छिपे होने वाले शारीरिक अपराध भी दो प्रकार के होते हैं। कहीं पुरुष और स्त्री दोनों की सहमति से और कहीं स्त्री की असहमति से। असहमति से होने पर भी स्त्रियाँ कई बार लोकलाज के कारण उस अपराध को दबा देती हैं।

देवन सावित्री की बात की ओर जितना बढ़ते, मन उतना ही उलझता भी और सुलझता भी जाता। इसलिए सावित्री की बात को यूँ ही टाल देना उन्हें ठीक नहीं लगा। लेकिन चुपचाप टाल देने से सावित्री का मन भी कहाँ शान्त होता, विशेषतः तब जब अशान्ति उसके मन में घर कर चुकी थी।

अपना भार विचारचन की ओर बढ़ाते हुए देवन बोले-

"विचारचन, मुझसे अधिक निकट का सम्बन्ध तुम्हारा है। इसलिए तुम सावित्री को आश्वस्त करो कि ऐसी शंका मन से निकाल दें।"

देवन की बात सुनकर विचारचन के भीतर रामायण के बालि जैसी दुगुनी शक्ति का संचार हुआ। किसी समस्या का समाधान वैचारिक भी होता है और व्यावहारिक भी। यहाँ अभी समस्या वैचारिक थी। व्यावहारिक समस्या तो घटना घटने के बाद आती और ऐसी कोई घटना अभी हुई नहीं थी।

विचारचन बोले-

“भाय साहब, दुनिया में ऐसे हजारों-लाखों दोस्त हुए हैं, जिन्होंने एक-दूसरे के लिए अपना जीवन दाँव पर लगा दिया। वहाँ यदि एक विधवा के प्रश्न पर हम चुपचाप गबदी मारकर मुँह में ताला लगा लें तो ऐसे पुरुष थोड़े ही हैं। आपके सामने कहता हूँ कि जिस दिन दोस्तीनी के सम्बन्ध में ऐसा कोई अत्याचार सुनूँगा, उसी दिन अपनी जान दाँव पर लगाकर उसे मिटाने का प्रयास करूँगा।”

विचारचन का समर्थन करते हुए देवन बोले-

“हाँ, इससे अधिक दूसरा कर भी क्या सकता है।”

विचारचन के विचार को देवन का समर्थन मिलते ही सावित्री के मन की इच्छाशक्ति जाग उठी। इच्छा जागने पर ही मनुष्य अपने जीवन के प्रयोजन के प्रति संकल्पित होकर अपना जीवन समर्पित करता है। गाँव-घर में उपदेश बाँटने वाले बहुत लोग कहते हैं कि इच्छा सबसे बुरा भाव है, इसलिए उसकी ओर देखना भी नहीं चाहिए। लेकिन यह विचार मन में नहीं आता कि इच्छाशक्ति ऐसी शक्ति है, जो मनुष्य को जीवन के प्रति संकल्पित करके गन्तव्य तक पहुँचाती है।

साधना आरम्भ होते ही इच्छा को शक्ति मिलने लगती है और वही शक्ति बढ़ते-बढ़ते जीवन को साथ लेकर गन्तव्य तक पहुँचा देती है। गन्तव्य की ओर बढ़ती इच्छा ही धीरे-धीरे भावमय इच्छाशक्ति बनती है और वही सार्थक जीवन की सार्थकता है।

जैसे-जैसे सावित्री के मन में इच्छाशक्ति जागने लगी, वैसे-वैसे मन का उत्साह भी बढ़ने लगा। भाव से भावुक होकर वे बोलीं-

“भैया, आप दोनों के सामने वचनबद्ध होती हूँ कि जैसे-जैसे आप दोनों राय-विचार देंगे, वैसे-वैसे करती चलूँगी।”

सावित्री का समर्पित भाव सुनकर देवन के मन में वैसी खुशी हुई, जैसी किसी को अशर्फी मिल जाने पर होती है। लेकिन अगले ही क्षण मन में आया कि जैसे जीवन की सीमा होती है, अर्थात कोई जीवन में कितनी दूर तक पहुँच चुका है, वैसे ही विचार और बोध की भी सीमा होती है। इसलिए अच्छा होगा कि

सावित्री के विचार-बोध की जो सीमा है, उसे परखकर ही अपना जीवन-दर्शन उनके सामने रखा जाए। ऐसा न किया तो रामायण के नल-नील के पत्थरों की तरह विचार समुद्र में तैरते रहेंगे, लेकिन एक जगह जुड़कर सेतु नहीं बना पाएँगे।

देवन बोले-

“विचारचन, मैं यह नहीं समझ पा रहा हूँ कि सावित्री के इस समर्पण की भावभूमि क्या है?”

‘भावभूमि’ शब्द सुनकर विचारचन चौंके, लेकिन अगले ही क्षण मन ने कहा कि यहाँ किसी विषय की भावभूमि नहीं, जीवन की भावभूमि पूछी जा रही है। अर्थात सावित्री के जीवन-स्तर की सूत्रबद्ध सीमा क्या है।

विचारचन बोले-

“दोस्तीनी, अब गियानचन वाली दोस्ती भूल जाइए। अब हमारे और आपके बीच अपनी मैत्री का आरम्भ होगा। इसलिए अभी कह देता हूँ कि स्त्रियों में दो महत्त्वपूर्ण दोष होते हैं। पहला, फूस-फास बोलना और दूसरा, किसी विचार या वस्तु को छिपाना। इसलिए अपनी बात रखने से पहले वचनबद्ध होइए कि इन दोनों से परहेज रखेंगी।”

सावित्री कुछ कहतीं, उससे पहले देवन ही बोले-

“विचारचन, तुम्हारी बात काट नहीं रहा हूँ, लेकिन जिन दोनों दोषों की बात तुम कर रहे हो, वे जीवन की ऊपरी सतह के दोष हैं। जब मनुष्य व्यावहारिक जीवन में जीवन के मूल तत्त्व को पहचानकर उसके अनुकूल अपना जीवन बनाकर चलता है, तब ये दोनों दोष अपने-आप निर्मूल होकर मिट जाते हैं।”

देवन की बात सुनकर सावित्री और विचारचन, दोनों के मन में जैसे एक नई चमक आ गई। सावित्री बोलीं-

“भैया, इनसे क्या छिपाना। पति के सामने कितनी सम्पत्ति थी और अब कितनी है, पहले वही बता देती हूँ।”

सावित्री की बात को गहरी गाँठ बाँधते हुए देवन बोले-

“बहुत अच्छा विचार बनाया है। मन में जो है, पहले सब कह जाइए।”

सावित्री बोलीं-

"अब परिवार का सोलहों आना भार मेरे ऊपर आ गया है। लेकिन जब रघुनाथ दस वर्ष का होगा तो वही अपना भार सँभालते-सँभालते परिवार का सोलहों आना भार भी सँभालेगा। उसके पिता की भी इच्छा थी कि रघुनाथ को अच्छी तरह पढ़ाएँ। अपने गाँव में ही देखती हूँ कि गोपीनाथ के पिता की मृत्यु उस समय हो गई थी, जब गोपीनाथ का जन्म तो हो चुका था, लेकिन उसका छठिहार भी नहीं हुआ था। उसकी माँ ने अकेले गोपीनाथ को पढ़ाकर इतना बड़ा डॉक्टर बनाया। मेरी भी इच्छा है कि रघुनाथ वैसा ही मनुष्य बने।"

सावित्री के मुँह से निकले अनेक विचारों को देवन कबीर बाबा की तरह ताने-बाने में एक-एक सूत पिरोते हुए बोले-

"पहले रघुनाथ की पढ़ाई पर विचार कीजिए। अब तक क्या किया है और आगे क्या करना है?"

सावित्री बोलीं-

"अब तक का समय नियारे-भास में ही निकल गया। रघुनाथ के पाँच वर्ष भी पूरे हो गए। छह-सात महीने पहले मेरा विचार था कि उसका नाम स्कूल में लिखवा दिया जाए, क्योंकि रघुनाथ से छोटे-छोटे बच्चों को भी स्कूल जाते देखती थी। लेकिन उसके पिता का विचार था कि पाँच वर्ष पूरे होने के बाद ही उसका नाम स्कूल में लिखाएँगे। इसी तर्क-वितर्क में हम दोनों के बीच कहा-सुनी भी हुई थी। लेकिन...।"

पति पर ध्यान जाते ही सावित्री उस सीमा पर खड़ी हो गईं, जहाँ एक ओर पति थे और दूसरी ओर पुत्र। विचार ठिठक गया और वे चुप हो गईं।

रघुनाथ के जीवन की बात सुनते-सुनते देवन के मन में एक बच्चे के जीवन के प्रति स्नेह उमड़ आया। ध्यानमग्न होकर सुनते हुए उनकी आँखें अपने-आप बन्द हो गई थीं, लेकिन कान सावित्री की बात पर लगे थे। 'लेकिन' के बाद सावित्री को चुप पाकर देवन ने झटपट आँखें खोलीं और पूछा-

"लेकिन क्या?"

विचारचन बोले-

“लेकिन-वेकिन कुछ नहीं। मन में जो है, कहती चलिए।”

विचारचन की बात सुनकर देवन चुप रहे। पिछली बात याद करते हुए सावित्री बोलीं-

“सारी बात इन्हें भी शायद मालूम नहीं होगी। परिवार में पाँच बीघा जमीन थी। उसमें दस कट्ठे में पेड़-बिरिछ और बाँस थे। जैसे पेड़-बिरिछ और बाँस बह गए, अर्थात बिक गए, वैसे ही दो बीघा जोत की जमीन भी गिरवी पड़ गई।”

‘जमीन गिरवी पड़ गई’ सुनकर देवन के मन में आया कि जो जमीन अब भी बिना गिरवी पड़ी बची है, उतनी में भी यदि आधुनिक, अर्थात वैज्ञानिक ढंग से खेती की जाए तो पर्याप्त हो सकती है। लेकिन अगले ही क्षण मन ने कहा कि जो लोग पीढ़ियों से किसान हैं और अपने जीवन भर खेती करते आए हैं, उन्हें भी आज की आधुनिक खेती का पूरा ढंग कहाँ मालूम है, फिर सावित्री कैसे जानेंगी, जिन्होंने अब तक खेती के निकट जाकर काम ही नहीं किया है?

कुछ परिवार तो भूमि-छेदन, अर्थात जमीन की जोत-कोड़ को भी अधर्म-वृत्ति समझते आए हैं। सावित्री का परिवार वैसा नहीं है, लेकिन इतना अवश्य है कि दूसरे परिवारों की स्त्रियों की तरह वे भी खेती-पथारी को पुरुषों का काम समझकर उससे दूर रही हैं। यह अलग बात है कि गरीब परिवारों की स्त्रियाँ पुरुषों के साथ खेती का काम करती हैं, लेकिन सावित्री की स्थिति वैसी भी नहीं रही है।

फिर देवन के मन ने कहा, जीवन क्या कोई एक दिन की चीज है या पेट-मुँह के कीड़े की तरह केवल एक घंटे का जीवन है? जीवन तो जीवन है। उसमें विचारगत जीवन भी होता है और क्रियागत, अर्थात व्यवसायगत जीवन भी। दोनों में अन्तर है। विचारगत जीवन मनुष्य अपने जीवन के अनुकूल बनाकर चलता है, जबकि व्यवसायगत जीवन जीवन-धारा है, जिसमें एक ही धारा में अनेक व्यक्तियों के परिवार चलते हुए जीवन की नैया पार करते हैं।

जितना देवन विचार की ओर बढ़ते गए, बात उतनी ही जटिल होती गई। उस जटिलता को समेटकर उन्होंने सोचा कि पहले सावित्री के जीवन को स्थिर

करना है, अर्थात एक सीमा-रेखा खींचकर उसे खड़ा करना है। उसके बाद एक-एक समस्या की गाँठ सुलझाते चलेंगे।

इसी सीमा पर पहुँचते-पहुँचते जैसे देवन की आँख खुली। बात यह स्पष्ट हुई कि पति-वियोग सावित्री को अवश्य हुआ है, लेकिन वह काम पीछे छूट गया है जिसे पति-पत्नी दोनों ने विचारकर रोपना चाहा था। बीच में बड़ी बाधा अवश्य आ गई, लेकिन संकल्प समाप्त नहीं हुआ।

खेती-बारी की बात फिलहाल मन से हटाकर देवन बोले- "सावित्री, अभी एक साथ अनेक कामों में हाथ लगाओगी तो कुछ भी ठीक से नहीं सँभलेगा। अभी पहला काम यह है कि कल रघुनाथ का नाम स्कूल में लिखवा दो।"

'रघुनाथ का नाम स्कूल में लिखवा दो' सुनते ही सावित्री के मन में अतीत का विचार खुशी पैदा करने लगा। सात महीने पहले जो विचार मन में रोपा था, अब उसे जीवन की धरती पर उतारने का अवसर सामने था। लेकिन अगले ही क्षण मन उदास हो गया। स्कूल में पहले दिन नाम लिखवाएँगी तो गुरुजी को नाम-लिखाई की फीस भी तो देनी होगी।

पहले जब लोगों के पास रुपये-पैसे का अभाव रहता था, तब गुरुजी को दक्षिणा में ठुर्री दी जाती थी। ठुर्री अर्थात बिना किसी लिखावट वाला वह सिक्का, जिसका अपने यहाँ चलन था। बाद में एक पैसा देने का चलन हुआ, उसके बाद रुपया और अब शिक्षा का खर्च लाखों तक पहुँच गया है।

यह सोचते ही सावित्री का मन भीतर-ही-भीतर झनझना उठा कि रघुनाथ का नाम लिखाने के लिए हाथ में एक भी रुपया कहाँ है। वे बोलीं-

"भैया, हाथ में एक भी पैसा नहीं है। कैसे...?"

सावित्री की बात सुनकर देवन का मन एक क्षण ठिठका। उन्हें ध्यान आया कि मिथिला के समाज में ऐसी परम्परा भी रही है कि शिक्षा ग्रहण करने के लिए लोग एक-दूसरे की आर्थिक सहायता करते थे। कितने लोगों ने विद्यालय बनवाए और चलाए भी। आज के परिवेश में भले वह भावना मिटती जा रही हो।

देवन ने विचारचन की ओर देखा। उनकी दृष्टि पड़ते ही विचारचन सावित्री से बोले- "दोस्तीनी, क्या मैं कोई बिरान, अर्थात पराया हूँ कि आपके हाथ में पैसा

नहीं रहने से बच्चे का नाम स्कूल में नहीं लिखा जाएगा? नाम लिखाने से लेकर अभी जो भी आवश्यकता होगी, सब पूरा कर दूँगा। कल साथ चलेंगे और रघुनाथ का नाम स्कूल में लिखवा देंगे।"

अगले दिन के काम की व्यवस्था सुनते ही सावित्री का मन भविष्य की ओर दौड़ गया। होता भी ऐसा ही है कि जीवन्त जीवन सदा आगे की ओर बढ़ने का प्रयास करता है। क्रियागत जीवन तो क्रिया की अपनी गति से चलता है, लेकिन विचार की कोई आड़-मेड़ नहीं होती।

सावित्री बोलीं- "भैया, खेती-पथारी का भी कोई उपाय बता देते तो अपने बल पर परिवार चलाने लगती।"

सावित्री की बात सुनकर देवन ने मन ही मन विचार किया कि परिवार के हिसाब से सावित्री के पास खेत-पथार बहुत अधिक नहीं है, लेकिन पारम्परिक खेती के कारण वह झुझुआन, अर्थात कमजोर-सा दिखाई पड़ता है। फिर मन ने कहा, क्यों न काम में बाँधकर सावित्री के जीवन की गाड़ी को आगे बढ़ाया जाए।

देवन बोले- "कल पहले बच्चे का नाम स्कूल में लिखवा दीजिए। साँझ को मैं स्वयं आपके यहाँ आऊँगा। तब खेती-पथारी के विषय में विचार करेंगे कि किस रूप में आगे चलना है। क्या कहते हो, विचारचन?"

विचारचन बोले- "आपका विचार एक लाख का है, भाय साहब। इतनी हड़बड़ी भी ठीक नहीं कि पत्तल पर पड़ी वस्तु को हाथ में उठाकर वहीं चाटने लगें।"

सावित्री की ओर देखते हुए देवन बोले- "अब जाइए। आपको भी भोजन बनाने का समय हो गया है और मेरे भी साँझ के काम पीछे पड़ रहे हैं। आगे की बात आगे करेंगे।" ❑

अंतिम पड़ाव

पन्द्रह वर्ष बीत गए। रघुनाथ कृषि स्नातक बन चुका था। अन्तिम वर्ष की परीक्षा में उसने प्रथम स्थान प्राप्त किया था। विवाह की बात लेकर लोग परसों आने वाले थे। यही सूचना देने लड्डूलाल आज सुबह सावित्री के पास आए थे।

सावित्री लड्डूलाल को गाँव का एक किसान समझती थीं। लेकिन खेती के साथ-साथ वे घटकैती का काम भी करते थे। सरकारी काम हो या गैर-सरकारी, अर्थात सामाजिक काम, बीच में बिचौलिये की भूमिका रूई के बिनौले की तरह कहीं न कहीं रहती ही है। बिचौलिया बनने के दो कारण होते हैं। पहला, किसी काम की व्यवस्था बैठाकर बीच में कमीशन के रूप में कुछ कमा लेना और दूसरा, अनजान व्यक्ति को काम का रास्ता दिखाकर उसकी सहायता करना। लड्डूलाल पहले प्रकार के बिचौलिया-घटक थे।

अब तक सावित्री ने लोगों के मुँह से घटकों की चर्चा ही सुनी थी, क्योंकि अपने जीवन में ऐसे काम से कभी उनका वास्ता नहीं पड़ा था। इसलिए यह कहना ठीक नहीं कि वे घटकैती का अर्थ नहीं समझती थीं, लेकिन उसके व्यवहार का अनुभव उन्हें नहीं था। रघुनाथ के विवाह की बात लेकर घटक आएँगे, यह सुनकर उनका मन कुछ ठिठका। अपने को अल्हड़-अनाड़ी बनाते हुए उन्होंने पूछा-

"तो मुझे क्या-क्या करना पड़ेगा?"

सावित्री का सोलहों आना भार अपने ऊपर लेते हुए लड्डूलाल बोले-

"आपको कुछ नहीं करना पड़ेगा। सोलहों आना भार मेरे ऊपर रहा।"

सावित्री बोलीं-

"दरवाजे पर जब घटक आएँगे तो उनके खाने-पीने की व्यवस्था भी न करूँ, यह कैसा लगेगा?"

लड़ूलाल को सारी बात पहले से मालूम थी। कमिश्नर साहब के मुँहलगुए ने उन्हें साफ-साफ समझा दिया था कि रुपये-पैसे या लेन-देन के कारण काम बिगड़ने नहीं देना है।

लड़ूलाल बोले-

“कमिश्नर साहब स्वयं आएँगे। पाँच लोगों का दल रहेगा और अपनी व्यवस्था करके आएँगे। आपको केवल ‘हाँ’ कह देना है कि रघुनाथ का विवाह उनकी बेटी से करेंगी।”

लड़ूलाल की बात सुनकर सावित्री के मन ने भीतर ही भीतर मना किया। यह घर-परिवार का काम है और वह भी जीवन का पहला महत्त्वपूर्ण काम। विचारचन और देवन भैया से बिना विचार किए विवाह की बात स्वीकार कर लेना उतावलापन होगा। लेकिन यही बात यदि लड़ूलाल से कह दें तो कहीं वह उन्हें बिना डोराडोरी की, अर्थात विचारहीन स्त्री न समझ ले। फिर मन में यह भी आया कि बेटे की पढ़ाई पूरी हो गई है। अब अगला काम उसका परिवार बसाना ही है, इसलिए विवाह भी आवश्यक है।

बीते पन्द्रह वर्षों में सावित्री, देवन और विचारचन के बीच जो सम्बन्ध बना था, उसने सावित्री को केवल गृहिणी बनाकर नहीं रखा था। वे अपने को गृहपति भी समझने लगी थीं। यह केवल विचार की दौड़ में नहीं हुआ था, जीवन की कर्मभूमि के रणक्षेत्र में भी वे वैसी ही बन चुकी थीं। यदि ऐसा नहीं होता तो केवल चार बीघा जमीन वाला परिवार कृषि की उपज से बेटे को कृषि स्नातक कैसे बना पाता? पाँच बीघा जमीन में से एक बीघा बेचकर, गिरवी पड़ी जमीन छुड़ाकर, अलग-अलग बाधों में फैली जमीन को यथासम्भव एक जगह समेटकर, बोरिंग और पम्प की व्यवस्था करके खेतों की सिंचाई का उपाय उन्होंने कर लिया था।

सावित्री बोलीं-

“जब दरवाजा बना रखा है तो किसी के आने से मना थोड़े करूँगी। जब आएँ, जिस दिन आएँ, आएँ। मैं तैयार हूँ।”

सावित्री की बात का ठोसपन देखकर लड़ूलाल चापलूसी पर उतर आए।

बोले-

“जैसी आपकी अपनी हड़गर-कटगर देह है, वैसी ही पुतोहू भी होगी। समझ लीजिए, जैसे राम-सीता की जोड़ी थी, वैसी ही रघुनाथ की भी होगी।”

सावित्री का जीवन समय के साथ बँधकर चल रहा था, इसलिए वे लड़ूलाल से अधिक बातचीत नहीं करना चाहती थीं। लेकिन परिवार का अनिवार्य काम था, इसलिए बात अधूरी छोड़ना भी उचित नहीं था। बातचीत को एक सीमा पर लाकर उन्होंने पूछा-

“परसों किस पहर आएँगे?”

घटकैती करते-करते लड़ूलाल में बात का तालमेल बैठाने की कला आ गई थी। बोले-

“अभी इतना समझिए कि परसों आएँगे। आज साँझ तक बता दूँगा कि भोर के पहर आएँगे या दोपहर के।”

सावित्री बोलीं-

“बहुत बढ़िया।”

इतना कहकर वे चुप हो गईं।

लड़ूलाल के मन में था कि सी.आई.डी. के अफसर की तरह घुमा-फिराकर जाल फैलाएँ और सावित्री को इस तरह उलझा लें कि काम पक्का होने का विश्वास बन जाए। लेकिन सावित्री का व्यक्तिगत जीवन अब सामाजिक जीवन की धारा में बँध चुका था। वे समझ चुकी थीं कि समाज के विचार को समझे बिना केवल व्यक्ति-व्यक्ति की राय से कोई बड़ा निर्णय लेना उचित नहीं। हाँ, सामाजिक धारा को पकड़कर अपनी धारा को उसमें मिलाते हुए आगे बढ़ा जा सकता है। लेकिन समाज की धारा स्वयं बहुआयामी है और व्यवस्था के अनुसार अनेक दिशाओं में बहती रहती है। उसके बीच अपनी धारा को सँभालकर चलना आसान नहीं, लेकिन इसका अर्थ यह भी नहीं कि वह असम्भव है।

लड़ूलाल के मन में यह भी घूम रहा था कि सावित्री से बातचीत तो संक्षेप में हुई, जबकि कमिश्नर साहब इतने ऊँचे पद पर हैं कि बैठे-बैठे मौज करते हुए

पूरी कमिश्नरी जोत रहे हैं। फिर मन ने कहा कि इसी दुनिया में एक हलवाहा भी है, जो भोर के छह बजे से दोपहर बारह बजे तक केवल चार कट्ठे खेत की दोहरी जुताई करता है। उसकी मेहनत का अनुमान शायद कमिश्नर साहब को भी नहीं होता होगा।

खिलाड़ी घटक लड़ूलाल मन ही मन सामंजस्य बैठाने लगे कि जैसे किसी काम को करने के अनेक पन्ना-छिन्ना, अर्थात उपाय होते हैं, वैसे ही न करने के भी अनेक उपाय होते हैं। लेकिन एक मूल बात सावित्री के मुँह से निकल चुकी है कि दरवाजे पर लोग आएँगे तो उनका स्वागत अवश्य करेंगी। इसका अर्थ स्पष्ट है कि बात आगे बढ़ेगी।

फिर उनके मन ने कहा कि कमिश्नर साहब के मुँहलगुए, अर्थात पेशकार साहब ने जो दायित्व दिया था, वह तो पूरा हो गया। इसलिए क्यों न इन्दिरा आवास की तरह पहली किस्त का कमीशन भी ले लिया जाए और उनके आने की सूचना भी पहुँचा दी जाए।

सावित्री अपने काम की ओर बढ़ गईं और लड़ूलाल विवाह का मन्त्र जपते हुए अपने घर की ओर चल दिए।

सावित्री का जीवन अब व्यावहारिक हो चुका था, इसलिए उन्हें न किसी मन्त्र की आवश्यकता थी और न उसके जाप की। समय के साथ उनका जीवन वैसे ही मिलकर चल रहा था, जैसे चाँद-सूरज अपनी नियमित गति से दिन-रात चलते हैं। इसलिए सावित्री का मन कभी खाली नहीं रहता था। मन तो मन है, दिन-रात साठ हजार बार नाचता है। सावित्री का मन भी लड़ूलाल की बातों पर उसी तरह नाच रहा था।

नाचते-नाचते मन में आया कि भले लड़ूलाल ने साँझ का समय तय कर लिया हो, लेकिन तब तक मित्र विचारचन और पितातुल्य देवन भैया से विचार-विमर्श करने का समय तो बचा ही है। परिवार में एक नए मनुष्य का आगमन होगा, इसलिए यह आवश्यक है कि वह परिवार के अनुकूल हो। दूसरी ओर उस नए मनुष्य के लिए भी आवश्यक है कि परिवार मनुष्योचित हो।

विचारों के द्वन्द्व में पड़ी सावित्री के मन ने कहा, यह कौन-सी बहुत बड़ी

समस्या है? मनुष्य हूँ, मनुष्य की तरह चलती रहूँगी तो समस्या क्या है। जिस तरह वन सिंह को पालता है, उसी तरह सिंह भी वन को अपना समझकर उसकी रक्षा करता है।

अभी तो भिनसुरका उखड़ाहा है, अर्थात परिवार के जीवन का उदीयमान समय। इसे स्वर्ण अवसर कहें या स्वर्णिम समय, सब कुछ अभी उदयाचल पर है। इसलिए पहले अपने आर्थिक जीवन को उदीयमान बना लूँ। फिर दोपहर बाद, लड़ूलाल के साँझ वाले समाचार से पहले, देवन भैया और मित्र विचारचन से विचारों की मुँह-मिलानी कर लूँगी। जैसा विचार-विमर्श होगा, उसी के अनुसार आगे लड़ूलाल से बात करूँगी। अभी जो कुछ हुआ, वह तो राह चलते बाट-बटोही की बातचीत मात्र थी।

दोपहर बाद चार बजे सावित्री के मन ने अनुमान लगाया कि लड़ूलाल के काम की हड़बड़ी देखकर लगता है कि पहली साँझ में ही आगे की बातचीत करने आ जाएँगे। इसलिए अच्छा होगा कि उससे पहले अपना काम सँभालकर स्वयं तैयार हो जाऊँ। जो भी हो, काम तो अपने ही परिवार का है। वह भी ऐसा काम, जिससे अब तक ढह-ढहकर नीचे की ओर जाता परिवार केवल सँभलेगा ही नहीं, परिवार में नए मनुष्य के आगमन का द्वार भी खुलेगा।

अपने उठते हुए परिवार का रूप देखकर सावित्री का मन भर आया कि सबसे पहले इसी काम को आगे बढ़ाना है। आँगन का काम सँभालकर वे निकल पड़ीं।

सावित्री को देखते ही विचारचन बोले-

"दोस्तीनी, समय से पहले आगमन देख रहा हूँ?"

बेटे के विवाह का विचार मन में समेटते हुए सावित्री बोलीं-

"मित्र, परिवार में कुछ नया होने का आह्वान हो रहा है, इसलिए विचार करने आई हूँ।"

विचारचन सावित्री की बात का ठीक अर्थ नहीं समझ सके, लेकिन अनुमान लगा लिया कि कोई विशेष बात है। फिर उनके मन में आया कि मैं कौन खेत की मूली हूँ कि विशेष विचार को सामान्य बना दूँ। अच्छा होगा कि सावित्री

की बात पर देवन भाय का विचार भी जान लिया जाए।

विचारचन बोले-

“दोस्तीनी, जब हर विचार में देवन भाय को आगे रखते आए हैं, तब उनसे बिना विचार किए कुछ करना उतना अच्छा नहीं होगा। चलिए, उन्हीं के पास। वहीं अपनी बात रखेंगे और सब मिलकर एकमत से विचार कर लेंगे।”

सावित्री बोलीं-

“बहुत बढ़िया।”

दोनों देवन के यहाँ पहुँचे। दोपहर बाद के कुछ काम देवन के बाकी थे, वही कर रहे थे। दोनों को देखकर काम से हाथ रोकते हुए बोले-

“कोई विशेष बात है क्या, विचारचन?”

विचारचन के बोलने से पहले सावित्री बोलीं-

“हाँ भैया, साँझ में लड़ूलाल रघुनाथ के विवाह की बात करने आएँगे। इसलिए मन में आया कि पहले भैया से ही समझ लूँ।”

विवाह का नाम सुनते ही देवन के विचारशील मन ने कहा कि बड़े काम के सामने छोटे काम का महत्त्व घट जाता है। पहले सावित्री की बात का विचार कर लेना उचित होगा।

देवन बोले-

“लड़ूलाल तो घटक है। घटकैती उसका पेशा है। इसलिए वह किसके काम से आया था, यह सब बताया?”

सावित्री बोलीं-

“हाँ।”

देवन ने पूछा-

“क्या कहा?”

सावित्री बोलीं-

“कमिश्नर साहब की बेटी है। उसी के निमित्त लड़ूलाल आए थे।”

देवन ने पूछा-

“और क्या कहा?”

सावित्री बोलीं-

“इतना ही कि परसों कमिश्नर साहब स्वयं बेटी के विवाह की बात लेकर आएँगे।”

सावित्री की बात सुनकर देवन के मन में अनेक प्रश्न उठ खड़े हुए। आज के परिवेश में कमिश्नर जैसे ऊँचे पद वाला व्यक्ति सावित्री जैसे साधारण परिवार में बेटी देगा, यह आश्चर्य की बात तो है। लेकिन असम्भव है, ऐसा भी नहीं। एक ओर समाज जातीय बन्धनों में बँटा है, जिसके कारण अनमेल विवाह की परिस्थितियाँ भी बनती हैं। दूसरी ओर रघुनाथ की योग्यता भी आकाश छू रही थी। परिवार साधारण भले हो, लेकिन विश्वविद्यालय में कृषि विषय में रघुनाथ ने प्रथम स्थान प्राप्त किया था। यह कोई छोटी बात नहीं थी।

आज के परिवेश में परीक्षा-फल केवल विद्यार्थी की प्रतिभा पर मिलता है, ऐसा भी नहीं है। उसमें पैरवी-पहुँच का प्रभाव भी रहता है। फिर भी यह कहना उचित नहीं कि प्रतिभा सोलहों आना समाप्त हो गई है। वह नगण्य मात्रा में ही सही, जीवित तो है। उसी के फलस्वरूप रघुनाथ ने प्रथम स्थान प्राप्त किया।

देवन ने सिर उठाकर सावित्री की ओर देखा तो लगा, जैसे चिड़िया का बच्चा माँ की ओर चोंच बढ़ाकर चारा माँग रहा हो। सावित्री भी उसी तरह उत्तर की प्रतीक्षा में थीं। लेकिन प्रश्न जटिल था। उसे छोटा मानना नादानी होती।

रघुनाथ स्नातक की डिग्री प्राप्त कर चुका था और वयस्क भी हो गया था। ऐसे में उसका विचार जाने बिना कुछ कहना उचित नहीं था। अब तक समाज में बेटा-बेटी का विवाह माता-पिता के दायित्व की सीमा में माना जाता आया था। लेकिन बाल-विवाह के समय की परिस्थिति और आज की परिस्थिति में अन्तर आ चुका है। उस समय गुलामी के जीवन में लोगों के जीवन का भरोसा भी वैसा नहीं था, इसलिए कम उम्र में विवाह करके माता-पिता अपना दायित्व पूरा कर लेते थे। जीवन की राह भी लगभग एक ही थी, अर्थात कृषि-आधारित जीवन। आज जीवन बहु-बटिया हो गया है और परिवार का गठन भी जटिल। ऐसी स्थिति

में समस्याओं का निदान पहले से सोच-विचारकर न किया जाए तो खतरा वैसा हो सकता है, जैसा घी और मधु के मिश्रण में माना जाता है। मात्रा कम-बेसी रहे तो अमृत और बराबर हो जाए तो विष।

विचारों में डूबे देवन के मन में अचानक आया कि जैसे समय का महत्त्व है, वैसे ही स्थान का भी महत्त्व है। यहाँ के समाज के कर्ता-धर्ता हम लोग ही तो हैं। समाज की गाँठों को समझने से लेकर उन्हें सुलझाने तक का कुछ भार हमारे ऊपर भी है।

घने भविष्य के वन में प्रवेश करने से पहले स्वयं को सचेत करते हुए देवन ने विचारचन से पूछा-

“क्या विचारचन, तुम्हारा क्या विचार है?”

विचारचन क्रिकेट के छक्के की तरह तुरन्त बोले-

“भाय साहब, आपके सामने मेरा क्या विचार! अभी तो आपसे समझ-सीख ही रहा हूँ।”

विचारचन की बात को सही मानकर देवन ने मन ही मन सोचा कि क्यों न पहले सावित्री के साथ रघुनाथ के पेट की बात, अर्थात मन की बात भी समझ ली जाए। उसके बाद अपनी बात रखकर निर्णय की सीमा पकड़ी जाए। नहीं तो काम में घट-बढ़ का सोलहों आना भार अपने ही ऊपर आ जाएगा।

फिर मन ने कहा कि जब सावित्री आशा लेकर आई हैं तो उन्हें निराश करना भी उचित नहीं। प्रश्न पर प्रश्न और समस्या पर समस्या उठेंगे, तभी भविष्य की आशा देखते हुए समाधान के उत्तर भी मिलेंगे। देवन के मन में सन्तोष आया।

देवन बोले-

“सावित्री, पहला प्रश्न यहीं से शुरू करता हूँ। समाज के रिश्ते से मैं आपका भैंसुर हूँ और आप मेरी भाव हैं। दोनों के बीच ऐसा सामाजिक बन्धन है कि खुलकर बात नहीं कर सकते। जब खुलकर बातचीत ही नहीं होगी तो मन की बात कैसे समझेंगे? इसलिए यदि मैं आपको नाम लेकर ‘सावित्री’ कहूँ तो इसे अनुचित मत समझिए।”

देवन की बात सुनकर विचारचन और सावित्री, दोनों के मन में पुराने संस्कार एक क्षण के लिए जाग उठे। लेकिन पन्द्रह वर्षों से देवन, विचारचन और सावित्री के बीच जो सम्बन्ध बना था, उसमें देवन के मन की बात सावित्री समझने लगी थीं और देवन भी सावित्री के मन की बात परखने लगे थे। सावित्री के विचार में दृढ़ता आ चुकी थी।

मन का उद्गार व्यक्त करते हुए सावित्री बोलीं-

"भैया, सामाजिक सम्बन्ध से आपको भैयारी में मानती हूँ, लेकिन मेरी उम्र की आपकी बेटी भी है। इसलिए आपको पिता के समान समझना भी अनुचित होगा क्या? जब पिता के समान हैं तो नाम लेकर बुलाते हैं, उससे तो मुझे खुशी ही होनी चाहिए।"

विचारचन का मन हल्की बाँसुरी की तरह बज उठा। बोले-

"भाय साहब, भाई में कोई दादा भी होता है। भैयारी के नाते आप अपने भी दादा हुए। इसलिए सोलह आना की कौन कहे, बत्तीस या चौंसठ आना लाभ तो आपका ही हुआ।"

समतल भूमि देखकर देवन बोले-

"सावित्री, अपने यहाँ एक कहावत है, 'पानी में मछली और नौ-नौ कुटिया बाँट-बखरा!' अभी रघुनाथ के विवाह की बातचीत शुरू ही हुई है। दो समाजों के दो मनुष्यों के बीच सम्बन्ध स्थापित होगा, वह एक ही दिन में थोड़े हो जाएगा। जैसे-जैसे समय और काम का समय आएगा, वैसे-वैसे विचार करते चलेंगे। क्यों विचारचन?"

विचारचन ने समर्थन करते हुए कहा-

"एक लाख का विचार है, भाय साहब। दोस्तीनी, साँझ में जब लड़ूलाल समाचार देने आएँ तो उनसे कह दीजिए कि एक निश्चित समय बना लें। जिस तरह कमिश्नर साहब की ओर से पाँच लोग आएँगे, उसी तरह अपने समाज के पाँच लोगों को भी हम विचार-विमर्श के लिए बुलाएँगे।"

"बहुत बढ़िया!" सावित्री बोलीं।

"भैया, अभी जाती हूँ। आगे जैसी बातचीत होगी, वैसा उन्हें कह दूँगी।"

ठीक छह बजे पहली साँझ में लड़ूलाल सावित्री के यहाँ पहुँच गए। पहली किस्त का भुगतान उन्हें अच्छी तरह मिल चुका था, इसलिए यूरिया खाद पाए खेत जैसी हरियाली चेहरे और मन दोनों पर थी। अपनी बुद्धि पर उन्हें असीम विश्वास भी था।

घटक की शैली में लड़ूलाल बोले-

"परिवार का भाग्य जाग गया।"

'परिवार का भाग्य जाग गया' सुनकर सावित्री के मन में एक साथ अनेक प्रश्न उठे। लेकिन पिछले पन्द्रह वर्षों के जीवन ने उन्हें ठोस जमीन पर खड़ा कर दिया था। इसलिए 'भाग्य' का शाब्दिक रूप उनके लिए बदल चुका था। उसे स्पष्ट करने के लिए उन्होंने पूछा-

"कैसा भाग्य?"

जूते की पालिश पर क्रीम चढ़ाकर चमकाने की तरह लड़ूलाल अपनी बात में चमक चढ़ाते हुए बोले-

"समझ लीजिए, राजधानी में प्रवेश का रास्ता खुल रहा है। कमिश्नर साहब राज-पाट सँभालते हैं, राजा जैसे हैं और राजभोग करते हैं। उनके परिवार की बेटी पुतोहू बनकर आपके परिवार में आएगी, यह भाग्य जागना नहीं तो और क्या है?"

बिना सजावटी शब्दों के सावित्री बोलीं-

"जिसके भाग्य में राजभोग है, वह भोगे। मुझे उससे क्या? अपने पास जो है, उसी से खुश हूँ। साँझ का समय है। धीरे-धीरे अँधेरा फैलेगा और परिवार के काम भी पीछे पड़े हैं, इसलिए पहले बात सँभालिए।"

लड़ूलाल बोलने में तेज थे, लेकिन जीवन का दायरा केवल घटकैती तक सीमित रहने के कारण उनका बोध और शब्दकोश भी घटकैती तक ही सीमित था। इसलिए सावित्री की बात का पूरा अर्थ नहीं पकड़ सके। बोले-

"ठीक कहती हैं। मेरा भी क्या एक ही झमेला है! यहाँ से जाऊँगा तो दूध लाने दक्षिण टोले जाना है। दुकान का काम भी पीछे पड़ा है। क्या कहें, जहर-

माहुर खाने को भी फुरसत चाहिए।"

अपनी बात पर चर्चा न होते देखकर सावित्री भीतर से कुछ खिन्न हुईं, लेकिन परिवार का काम समझकर समय के अनुसार चलना ही उचित समझा। बोलीं-

"अभी जो समाचार है, पहले उसी पर विचार कर लीजिए।"

जैसे अचानक किसी विषैले जीव के काटने या डँसने से मन चौंक उठता है, लड़ूलाल भी एकाएक सँभले। बोले-

"बात पक्की है। परसों कमिश्नर साहब पाँच लोगों के साथ आएँगे।"

सावित्री बोलीं-

"भोर के पहर आएँगे या दोपहर में?"

दिन लड़ूलाल ने तय कर लिया था, लेकिन पहर तय करना छूट गया था। सकपकाकर बोले-

"वे बड़े लोग हैं, कोई जोगी-जपी थोड़े हैं कि ब्रह्ममुहूर्त में उठकर साधना करें। वे आराम से सोते हैं और नौ बजे बिछावन छोड़कर अपने काम में लगते हैं। इसलिए दोपहर का समय मान लीजिए।"

सावित्री बोलीं-

"बहुत बढ़िया। अब जाइए। आगे का विचार आगे होता रहेगा।"

विदा होते-होते लड़ूलाल बोले-

"एक बात अभी कह देता हूँ। बड़े लोगों का काम है, इसलिए जितना कम से कम लोग जानें, उतने ही लोगों तक भनक लगने दीजिएगा।"

लड़ूलाल की बात सावित्री के मन में झन से लगी। बेटा-बेटी का विवाह किसी एक परिवार का नहीं, सभी परिवारों का अनिवार्य यज्ञ है। फिर उसे छिपाकर रखने की क्या आवश्यकता? और यह तो बेटे के विवाह का यज्ञ है। दस बरियाती भी जाएँगे और दस गीतिहारिनें भी कुमरम से बिलौकी तक के गीत गाएँगी, तब बात कम-से-कम लोगों तक कैसे सीमित रहेगी?

फिर सावित्री ने अपने विचार को मन में समेट लिया। सोचा, अपने समाज

से मुँह छिपाकर रखना उचित नहीं। जिस तरह कन्यापक्ष से कमिश्नर साहब की ओर से पाँच लोग आएँगे, उसी तरह अपने समाज के पाँच लोगों को विचार में रखना भी उचित होगा। पन्द्रह वर्ष की विपत्ति के बीच जीवन हँसी-खुशी काट लिया, अब तो बेटा भी स्वामी के समान बड़ा हो गया है। आगे का जीवन कितना रह गया है जो नहीं कटेगा!

सावित्री बोलीं-

"क्या ढोल पीटना है? लेकिन जो अपने परिवार से सम्बन्धित लोग हैं, उन्हें तो पता चलेगा ही।"

चलते-चलते लड़्ूलाल बोले-

"चार बजे उन्हें बुला लीजिएगा।"

सावित्री बोलीं-

"बहुत बढ़िया।"

तीसरे दिन चार बजे देवन और विचारचन सावित्री के यहाँ पहुँचे। वहाँ पता चला कि कन्यापक्ष की गाड़ी रास्ते में पंक्चर हो गई है, इसलिए वे पन्द्रह मिनट देर से पहुँचेंगे।

कचहरी के अनुभव वाले विचारचन बोले-

"दुनिया का अजीब खेल है, भाय साहब।"

देवन ने पूछा-

"वह कैसे, विचारचन?"

विचारचन बोले-

"भाय साहब, आप तो जीवन भर ऐसे रहे कि न दौड़ पड़े, न ठोकर खाई। इसलिए कोट-कचहरी की जानकारी नहीं है। मेरी बात वैसी नहीं। जब तक कचहरी नहीं जाएँगे, कचहरी की और जब तक जेल नहीं जाएँगे, जेल की कारगुजारी कैसे समझेंगे?"

देवन बोले-

"हाँ, यह तो ठीक कह रहे हो।"

विचारचन को लगा कि नई बात कहकर उनका गुरुत्व बढ़ रहा है। भावमुख को गुरुमुख बनाते हुए बोले-

"भाय साहब, कोई व्यक्ति एक दिन कचहरी में हाजिर न हो तो वारंट निकल जाए, लेकिन कचहरी के बड़े कर्ता-धर्ता महीनों की कौन कहे, साल-साल भी हाजिर न हों तो कोई बात नहीं। यही तो दुनिया का अजीब खेल है।"

देवन के मन में भी कमिश्नर साहब का आगमन घूम रहा था और विचारचन के मन में भी। खाली समय देखकर दोनों अपने-अपने विचार से अपने-अपने खाने भर रहे थे। सावित्री, रघुनाथ और छोटी बेटी सुनीता भी बैठी थी।

देवन के मन में आया कि जब तक कन्यापक्ष के लोग नहीं आए हैं, तब तक रघुनाथ के मन की बात जान लेना अच्छा होगा। फिर मन ने कहा, जिसके सम्बन्ध का प्रश्न आएगा, उत्तर भी वही देगा। हाँ, बीच में यदि कोई बात उलटी पड़ जाए तो उसका कुछ दोष अपने ऊपर भी आएगा।

फिर देवन के मन में आया कि जिस तरह स्वाति नक्षत्र से टपकी जल-बूँद समुद्र की गहराई में अपना रास्ता बनाती हुई खुले मुँह वाली सीपी में पड़कर मोती बन जाती है, उसी तरह विचार के मोती को भी जीवन के मर्म का तात्त्विक विश्लेषण करते हुए पकड़ा जा सकता है। कहीं उत्तर ऊँच-नीच हुआ तो उसे भी समतल किया जा सकता है। देवन ने माना कि अभी तक की स्थिति अनुकूल है।

सवा चार बजे पाँच लोग सावित्री के यहाँ पहुँचे। उनमें कमिश्नर साहब, उनके एक कमिश्नर मित्र, पेशकार साहब, कन्यापक्ष का एक घटक और लड़ूलाल थे।

आते ही घर की ओर से हाथ-पैर धोने का आग्रह किया गया। क्या यह कोरोना के कारण था? नहीं, यह पूर्वजों से मिले विधि-व्यवहार का हिस्सा था। लेकिन कोई जूते खोलने को तैयार नहीं हुआ तो पैर कैसे धोते!

चाय चलने लगी। पेशकार साहब ने लड़ूलाल से कहा-

"पहले दोनों पक्षों का परिचय करा दीजिए, लड़ूलाल।"

परिचय होने के बाद कन्यापक्ष के घटक ने कहा-

“लड़ूलाल, सावित्री से कहिए कि हम लोग बेटे की माँग करने आए हैं।”

कन्यापक्ष के घटक ने जैसे ही कहा, सावित्री ने उत्तर दिया-

“दरवाजे पर आए अतिथि की माँग पूरी करने की परम्परा मिथिला में रही है, जो आज भी जीवित है।”

सावित्री की बात में किसे क्या मिला, यह सबके मन में रह गया। देवन का मन प्रसन्न हुआ, लेकिन वे कुछ नहीं बोले।

पेशकार साहब बोले-

“लड़के की नौकरी का भार कमिश्नर साहब पर है। बीच की वैवाहिक व्यवस्था में सावित्रीजी जैसा कहेंगी, हम तैयार हैं।”

पेशकार की बात सुनकर देवन ने विचारचन से कहा-

“विचारचन, हम लोग तो तीसरे पक्ष हुए। पहले लड़के, अर्थात रघुनाथ का विचार जान लेना उचित होगा न?”

विचारचन ने सहमति जताई-

“हाँ, यही होना चाहिए।”

अब तक समाज में प्रायः ऐसा ही होता आया था कि जिसका विवाह होना है, उसी से विचार नहीं लिया जाता था। इसलिए सबको यह नई रीति जैसी लगी।

कन्यापक्ष के घटक ने आँखों के संकेत से लड़ूलाल को पूछने के लिए कहा। अब तक लड़ूलाल की बातचीत केवल सावित्री से हुई थी। मन में डर भी उठा कि यदि घर की बनी-बनाई बात अचानक उलट गई तो अब तक किया सब पानी में चला जाएगा और सोलह की कौन कहे, बत्तीस आना दोष भी उन्हीं पर आएगा कि जब समाज में ऐसा नया विचार आ चुका था तो पहले क्यों नहीं जान लिया।

मन मसोसकर लड़ूलाल ने रघुनाथ से पूछा-

“बौआ, अब सारा दारोमदार आप ही पर है। इसलिए अपने मुँह से कहिए कि आपका क्या विचार है।”

बीस वर्ष का नवयुवक रघुनाथ अब तक के अपने जीवन से पूर्णतः सन्तुष्ट था। उसे अनुकूल परिस्थिति भी मिली थी। मध्यम किसान परिवार में उसका पालन-पोषण हुआ था और देवन के संसर्ग में रहते हुए सावित्री के साथ माँ-बेटा दोनों आज के किसान बन चुके थे।

'आज का किसान' इस अर्थ में कि उन्हें बारहों महीने की कृषि-पैदावार का बोध हो चुका था। अपनी जोत की जमीन को उन्होंने चौमास से धनहर तक इस तरह बना लिया था कि बारहों महीने जगन्नाथ की तरह एक फसल घर आती और दूसरी फसल की खेती की तैयारी साथ-साथ चलती रहती।

कृषि स्नातक होने के कारण रघुनाथ खेत के मूल्य का मर्म समझ चुका था। उसके मन में दृढ़ संकल्प बन गया था कि जिस तरह अब तक किसान परिवार रहा है, उसी तरह आगे भी बनाए रखेगा। उसकी माँ ने माँ बनकर उसे जीवन दिया है और जब तक जीवित रहेंगी, वे उसी तरह माँ बनी रहें, जैसे अब तक रही हैं।

रघुनाथ के मन में यह प्रश्न भी उठता था कि किसान-प्रधान देश होने पर भी किसानों में न किसानी का संकल्प ठीक से जागा है और न किसान-जीवन की इच्छाशक्ति। लेकिन दूसरों से उसे क्या लेना! उसका अपना जीवन और अपने परिवार का इतिहास उसके सामने था।

अपने मन का दृढ़ संकल्प व्यक्त करते हुए रघुनाथ बोला-

"नौकरी-चाकरी करने का मेरा विचार नहीं है। किसान परिवार में जन्म हुआ है और किसानी का जीवन बिताने का ही मेरा विचार है।"

रघुनाथ के मुँह से नौकरी न करने की बात निकलते ही सब एक-दूसरे की ओर देखने लगे। देवन ने विचारचन की ओर देखा, सावित्री ने देवन की ओर, कमिश्नर साहब ने दूसरे कमिश्नर की ओर और लड्डूलाल ने पेशकार की ओर। लेकिन किसी के मुँह से बोल नहीं फूट रहा था।

सबको चुप देखकर देवन बोले-

"जिस तरह लड़के ने अपना विचार अपने मुँह से कहा है, उसी तरह लड़की के मुँह से भी इतना विचार तो आना ही चाहिए कि वह किसान परिवार में

अपने को ढाल सकेगी या नहीं।”

देवन की बात सुनते ही विचारचन बोले-

“अब आप यह भी कह सकते हैं कि अब तक माता-पिता लड़का-लड़की के विचार के बिना ही विवाह करते आए हैं। लेकिन इस विचार के दायित्व की सीमा वहीं से कमजोर होने लगी, जहाँ से बाल-विवाह का उठाव शुरू हुआ। आज का परिवेश तो सहज ही ऐसा हो गया है, जहाँ वयस्क लड़का-लड़की का विवाह होता है।”

कमिश्नर साहब बोले-

“यह दो जीवनों के बीच का प्रश्न है, इसलिए तत्काल कुछ नहीं कह सकता। लेकिन मनुष्य भी तो मनुष्य है। अपने जीवन को स्वयं धारण करने की असीम शक्ति उसमें होती है।”

विचारचन बोले-

“एक नए परिवार के सृजन का प्रश्न है, इसलिए गम्भीर होकर विचार करने की आवश्यकता तो है।”

अन्तरराष्ट्रीय व्यापारी की तरह अपना ढीला-ढाला जाल फैलाते हुए लड़ूलाल बोले-

“पेशकार साहब, विवाह-दान यज्ञ-कर्म है, इसलिए हड़बड़ी से थोड़े होगा। स्थिर होकर विचार-विमर्श करते चलेंगे तो काम होगा ही। हाँ, इसमें थोड़ा और समय लगेगा।”

लड़ूलाल की बात सुनकर एक-एक कर सभी उठे और अपने-अपने रास्ते चल दिए।

सोचते-सोचते सावित्री के मन में आया कि भले लड़ूलाल ने साँझ का समय तय किया है, तब तक मित्र विचारचन और पिता-तुल्य देवन भैया से विचार-विमर्श करने का समय तो बचा ही है। परिवार में एक नए मनुष्य का आगमन होगा, इसलिए जितना आवश्यक यह है कि वह मनुष्य परिवार के अनुकूल हो, उतना ही आवश्यक यह भी है कि परिवार उसके लिए मनुष्योचित

हो।

विचारों के द्वन्द्व में पड़ी सावित्री के अपने मन ने कहा कि यह कौन-सी बहुत बड़ी समस्या है। मनुष्य हूँ, मनुष्य की तरह चलती रहूँगी तो समस्या ही क्या है? जैसे वन सिंह को पालता है, वैसे ही सिंह भी वन को अपना समझकर उसकी रक्षा करता है। अभी तो भिनसुरका उखड़ाहा, अर्थात भोर का आरम्भिक समय है। इसे परिवार के जीवन का स्वर्ण अवसर समझें या स्वर्णिम समय, सब कुछ अभी उदयाचल पर है। इसलिए पहले अपने आर्थिक जीवन को उदीयमान बना लूँ। फिर दोपहर बाद, लड़ूलाल के साँझ वाले समाचार से पहले देवन भैया और मित्र विचारचन से विचारों की मुँह-मिलानी कर लूँगी। जैसा विचार-विमर्श होगा, उसी के अनुसार आगे लड़ूलाल से बातचीत करूँगी। अभी जो कुछ हुआ, वह तो बाट-बटोही की राह-घाट की बातचीत मात्र थी।

दोपहर बाद लगभग चार बजे सावित्री के मन ने अनुमान लगाया कि लड़ूलाल के काम की हड़बड़ी देखकर लगता है, साँझ होते ही वह आगे की बातचीत करने आ जाएगा। इसलिए अच्छा होगा कि उससे पहले अपना काम सँभालकर स्वयं तैयार रहूँ। जो भी हो, काम तो अपने ही परिवार का है। वह भी ऐसा काम, जिससे अब तक ढह-ढहकर नीचे की ओर जाता परिवार केवल सँभलेगा ही नहीं, बल्कि परिवार में ऐसा मोड़ भी आएगा जिससे एक नए मनुष्य के आगमन का द्वार खुलेगा।

अपने उठते हुए परिवार का रूप देखकर सावित्री का मन हुलस उठा कि सबसे पहले इसी काम को आगे बढ़ाना है। आँगन का सारा काम सँभालकर वे घर से निकल पड़ीं।

सावित्री को देखते ही विचारचन बोले-

“दोस्तीनी, आज कुछ जल्दी आ गईं?”

बेटे के विवाह का विचार मन में समेटते हुए सावित्री बोलीं-

“मित्र, परिवार में कुछ आवाहन हो रहा है, इसलिए विचार करने आई हूँ।”

विचारचन सावित्री के मन की बात नहीं समझ सके, लेकिन अनुमान लगा

लिया कि कोई विशेष विचार है, तभी आई हैं। फिर उनके अपने मन में आया कि मैं कौन खेत की मूली हूँ कि किसी विशेष विचार को सामान्य विचार बना दूँ। इसलिए अच्छा होगा कि इसी बात पर देवन भाय का विचार भी जान लिया जाए।

विचारचन बोले-

"दोस्तीनी, जब हर विचार में देवन भाय को आगे रखते आए हैं, तब उनसे बिना विचार किए कुछ तय करना उतना अच्छा नहीं होगा। चलिए, उन्हीं के पास। वहीं अपनी बात रखेंगे और सब मिलकर एकमत से विचार कर लेंगे।"

सावित्री बोलीं-

"बहुत बढ़िया।"

विचारचन और सावित्री दोनों देवन के यहाँ पहुँचे। दोपहर बाद के कुछ काम देवन के बाकी थे, वही कर रहे थे। दोनों को देखकर काम से हाथ रोकते हुए बोले-

"कोई विशेष बात है क्या, विचारचन?"

विचारचन कुछ कहते, उससे पहले ही सावित्री बोलीं-

"हाँ भैया, साँझ में लड़ूलाल रघुनाथ के विवाह की बातचीत करने आएँगे। इसलिए मन में आया कि पहले भैया से ही समझ लूँ।"

विवाह का नाम सुनते ही देवन के विचारशील मन ने कहा कि बड़े काम के सामने छोटे काम का महत्त्व अपने-आप कम हो जाता है। इसलिए पहले सावित्री के इसी काम पर विचार कर लेना उचित होगा।

देवन बोले-

"लड़ूलाल तो घटक है, घटकैती उसका पेशा है। लेकिन वह किसके काम से आया था, यह सब बताया है?"

सावित्री बोलीं-

"हाँ।"

देवन ने पूछा-

“क्या कहा?”

सावित्री बोलीं-

“कमिश्नर साहब की बेटी है। उसी के निमित्त लड़ूलाल आए थे।”

देवन ने पूछा-

“और क्या कहा?”

सावित्री बोलीं-

“इतना ही कि परसों कमिश्नर साहब स्वयं अपनी बेटी के विवाह की बात लेकर आएँगे।”

सावित्री की बात सुनकर देवन के मन में अनेक प्रश्न उठ खड़े हुए। आज के परिवेश में कमिश्नर जैसे ऊँचे पद का व्यक्ति सावित्री जैसे साधारण परिवार में बेटी देगा, यह आश्चर्य की बात तो थी। लेकिन असम्भव है, ऐसा भी नहीं। एक ओर समाज जातीय बन्धनों में बँटा है, जिसके कारण अनमेल विवाह की परिस्थितियाँ भी बनती हैं। दूसरी ओर रघुनाथ की योग्यता आकाश छू रही थी। परिवार भले साधारण हो, लेकिन विश्वविद्यालय में कृषि विषय में रघुनाथ ने प्रथम स्थान प्राप्त किया था। यह कोई छोटी बात नहीं थी।

आज के परिवेश में परीक्षा-फल विद्यार्थी की प्रतिभा पर कहाँ मिलता है, वह तो पैरवी-पहुँच पर मिलता है। फिर भी यह कहना ठीक नहीं कि प्रतिभा सोलहों आना लुप्त हो गई है। नगण्य मात्रा में ही सही, वह जीवित तो है। उसी के फलस्वरूप रघुनाथ ने प्रथम स्थान प्राप्त किया था।

देवन ने सिर उठाकर सावित्री की ओर देखा तो लगा, जैसे चिड़िया का बच्चा माँ की ओर चोंच बढ़ाकर चारा माँगता है, वैसे ही सावित्री उत्तर की प्रतीक्षा में उनकी ओर देख रही हैं। लेकिन प्रश्न जटिल था। ऐसे प्रश्न को छोटा मानना नादानी होती।

रघुनाथ स्नातक की डिग्री प्राप्त कर चुका था और वयस्क भी हो गया था। ऐसे में उसका विचार जाने बिना कुछ कहना उचित नहीं था। अब तक अपने समाज में बेटा-बेटी का विवाह करना माता-पिता के दायित्व की सीमा में माना

जाता आया था। बाल-विवाह के समय की परिस्थिति और आज की परिस्थिति में अन्तर आ चुका है। उस समय लोग गुलामी का जीवन जी रहे थे और जीवन का भरोसा भी वैसा ही था। इसलिए माता-पिता कम उम्र में ही बेटा-बेटी का विवाह करके अपने दायित्व का निर्वाह कर लेते थे। ❑

❑❑❑

❑❑

❑

Notes